घनमाला

(आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के गीतों का अन्तिम गीत-संग्रह)

घनमाला

(आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के गीतों का अन्तिम गीत-संग्रह)

सम्पादक
प्रो. शिवमोहन सिंह

लोकभारती प्रकाशन

लोकभारती प्रकाशन
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग
प्रयागराज-211 001
वेबसाइट: www.lokbhartiprakashan.com
ईमेल : info@lokbhartiprakashan.com

शाखाएँ : 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने
पटना-800 006
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

प्रथम संस्करण : 2022

ग्राफिक क्रिएशन्स प्रा.लि.
प्रयागराज द्वारा मुद्रित

GHANMALA
Edited by Prof. Shiv Mohan Singh

ISBN : 978-93-93603-11-1

मूल्य : ₹ 600

श्रीमती सावित्री देवी
को
सादर

अपनी बात...

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने 1931-1997 ई. तक के अपने रचनाकाल में हिन्दी साहित्य जगत को गीतिकाव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य, नाटक, निबन्ध और समालोचना के कई ग्रन्थों से समृद्ध किया। १९६८-१९७० ई. तक इन्होंने भारतीय हिन्दी परिषद् के सभापति का पद संभाला। विडम्बना ही है कि तुलसीदास और ऋषभदेव महाकाव्य जैसे उल्लेखनीय सृजन एवं लगभग छ : दशकों तक साहित्यिक क्षेत्र में सक्रिय रहने के बावजूद अब तक अधिकांश अध्येता, शोधार्थी व साहित्य जगत का एक कड़ा हिस्सा इनकी सेवाओं से अपरिचित है।

'घनमाला' गीत-संग्रह इनके साहित्यिक अवदानों के क्रम में अन्तिम कड़ी है। प्रो. शिवमोहन सिंह जी द्वारा इन गीतों का सम्पादन उल्लेखनीय कार्य है। इस संग्रह का वन्दना के रूप में संकलित प्रथम गीत 'जय हिन्दी' न केवल हिन्दी भाषा के महात्म्य का गान है बल्कि इसमें भक्तिकाल से आधुनिक काल तक के उन सभी रचनाकारों के प्रति कृतज्ञता अर्पित है, जिन्होंने अपने रचनाकर्म के माध्यम से हिन्दी भाषा को विश्व पटल पर ख्याति के शिखर पर पहुँचाया। इस क्रम में छायावादी श्रेष्ठ कवियों प्रसाद, पन्त, निराला और कथा-सम्राट प्रेमचन्द्र की रचनाओं की लोकप्रियता, भाव व विषयवस्तु की एकरूपता, अभिव्यक्ति की सहजता ने हिन्दी भाषा तथा साहित्य में विश्व उड़ान भरने के जो पंख लगाए है, उनकी बहुत कम किन्तु सटीक शब्दों में चन्द्रकाश जी ने सराहना की है—

फैला देश-विदेश उजाला
सुविदित पंत, प्रसाद, निराला,
प्रेमचन्द न जीवन डाला,
अमर हमारी हिन्दी!

एक निरन्तर सक्रिय रचनाकार की मूल मंशा उसकी सभी कृतियों में अनायास ही उजागर हो जाती है। कवि का प्रथम उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति है। इस स्वराज का सम्बन्ध आत्मसंयम और स्वयं की विजय है। जीवन को आन्तरिक

और बाह्य कारको से निर्भय व स्वतन्त्र कर देना ही सही अर्थों में आनन्द व अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस 'अकुताभय जीवन' की कामना शुरू से अन्त तक इनके सृजन संसार में आत्म से सर्व अभियान तय करती नज़र आती है।

सच्चा सुख या आनन्द वही
जो है शाश्वत जो अकुतोभय
तप से होता प्राप्त
धर्म ही इसका स्रोत चरम अक्षय- (ऋषभदेव)
अन्तर्ज्ञान गहन ये चिन्मय
कर देंगे जीवन अकुतोभय
असत् तमस पर और मृत्यु पर,
जप पा नित नव सरसायेगे। (घनमाला)

इस गीत पर अरविन्द दर्शन का गहरा प्रभाव है। कवि ने मन के तीनों आयामों (अवचेतन, चेतन, अचेतन) से ऊपर अतिचेतन की सत्ता और सत्, चित्, आनन्द के उद्देश्य में सर्वांग योग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार ये बादल बहिर्जगत दोनों में 'नवजीवन' संचार के संवाहक है।

'आएंगे बादल दल के दल' में तप से संचित और संघर्ष से सिक्त लोकमंगलकारी बादलों का आह्वान 'धर्म-मेघ' पर आकर स्थूल से सूक्ष्य की ओर गमन करता है। 'धर्म-मेघ' योग समाधि में चित्त की वह दशा है जहाँ शान्ति का सामाज्य एवं अहम् भाव का पूर्ण विसर्जन हो जाता है। इस प्रकार यह आशावादी गीत जितना सामाजिक स्तर पर खुलता है उतना ही व्यक्ति के भीतर भी।

चिन्मय यह ऋतुचक्र का अनुशासन,
बरसेंगे अविरत धरती पर,
धर्म-मेध ये शुचि मंगल जल।
आएंगे बादल दल के दल।।

आधुनिक साहित्य और विशेषकर छायावाद युग की प्रधान प्रवृत्ति है— व्यक्तिगत गहन अनुभूति। इस अनुभूति के आलोक में छायावाद कवियों ने युग को अभिव्यक्ति दी थी। कुँवर चन्द्रप्रकाश जी का रचनाकाल, तमाम सामाजिक, राजनीतिक व साहित्यिक हलचलों का साक्षी रहा है। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयीकविता, अकविता जैसे अनेक काव्य आन्दोलनों के बीच इनकी

काव्य-साधना भाव प्रवणता में गत्यात्मक और शैल्पिक दृष्टि से छायावादी भूमि पर स्थिर रही है। इस संग्रह में कमोबेश सभी गीत प्रकृति की गोद में बैठकर शान्ति से क्रान्ति का बिगुल बजाते हैं—

दिन ठिठुर रहा कुहरे के
बादल छाये।
वन बाग हार सब हैं धन तिमिर छिपाये?
सरसों के फूलों की यह टिमटिम बाती,
है किरण ज्योति की केवल वही जगाती,
वह भेज रही लिख-लिख बसंत को पाती—
आओ हम सब मिल,
जग की हरें व्यथायें।

इस गीत में प्रकृति पर चेतना का समस्त आयोजन साभिप्राय है। जगती को पीड़ा हरने के लिए संगठन शक्ति का आह्वान है।

संघर्षरत मनुष विपरीत परिस्थितियों में भी संयम न खोकर परिस्थिति को अपने अनुकूल परिवर्तित कर देने की सामर्थ्य रखता है। समय किसी के लिए रुकता। इस चिर 'अनवरुद्ध जीवन' में अपने साहित्यिक कर्म से कवि 'तोड़ूँगा काँटों से काँटों की कारा का संकल्प लेते दिखाई पड़ते हैं। 'फूलों में परिणत हुए गड़े जो काँटों गीत उनकी इसी संघर्ष-चेतना का प्रतिफलन है, इसमें ऊर्जा का संचार भी है कर्म प्रवृत्ति की प्रेरणा भी।

तोड़ूँगा काँटां से काँटों की कारा—
बन जायँ फूल जो वंदनीय वे काँटे।
फूलों में परिणत हुए गड़े जो काँटे,
काँटे सब मैंने फूल बनाकर बाँटे।।

घनमाला में ऋतु चक्र परिवर्तन को आधार बनाकर व्यक्तिगत उतार-चढ़ाव से समष्टिगत उतार-चढ़ाव एवं सतत् संघर्ष की अनुगूंज है। चन्द्रप्रकाश जी का मन 'भारतमाता ग्रामवासिनी' में अधिक रमा है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में जहाँ गाँवों से पलायन, नगरीय चकाचौंध के प्रति आकर्षण और पश्चिमी सभ्यता-संकृति का प्रभाव पैर पसारना आरम्भ कर चुका था, वहीं कवि के उपमान गाँवों की निश्छलता, ग्रामीण मन, सौन्दर्य, ऋतु परिर्वतन की अनोखी छटा का चित्रण और प्रकृति की उदात्तता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

छायावादी सभी कवियों की भाँति इनके भी अपने प्रतीक है। पलाश, आम

की मंजरिया, गेहूँ की बालियाँ, सरसों के फूल इनकी सौन्दर्यानुभूति के अनुपम बिम्ब उपस्थित करते हैं—

रूप वह शिशिर-सुहानी धूप!
सरसों के फूलों सी जगमग
तन की कान्ति अनूप!
अंग-अंग में बलखाती-सी थी बेसुध तरुणाई,
लहर उठाती ज्यों गेहूँ के खेतों में पुरवाई,
अथवा जैसे गन्ध लुटाती फागुन की अमराई—
चकित दृष्टि कुंदों की सुषमा-सरि
की थी प्रतिरूप।

चन्द्रप्रकाश जी का समस्त चरनात्मक उपक्रम कर्म के प्रति सजगता का उद्बोधन गीत है। जिस प्रकार मिट्टी के बर्तन को आवें में पकना पड़ता है, तभी वह अपन वास्तविक रूप को प्राप्त करता है। सोन आग में तपकर और अधिक निखरता ह। ठीक उसी प्रकार विषम परिस्थितियों में मनुष्य को अपनी वास्तविक क्षमता का परिचय प्राप्त होता है। कठिन समय मे हताश, कुण्ठित, नियति मानकर निराश होने की बजाय अनवरत प्रयत्न स राह निकालने की प्रेरणा का संदेश इन गीतों की सार्थकता है। एक तरफ ताप की भट्ठियों मे तपकर संघर्षरत जीवन और अनेक आधाओं को पर करके, निखरन की उत्कंठा 'ख चलो, ले चलो, डूबती है तरी, जीर्ण है और है कोटि छिन्द्रों भरी' परिलक्षित होती है तो दूसरी तरफ युगीन विसंगतियों एवं बाधाआं को पार करने के लिए कर्म में प्रवृत्त होने का आग्रह है। 'पार कर पार रे' गीत पुरुषार्थ पर बल देता है। अपनी पूर्वर्ती रचनाआं में भी कवि पूरी सजगता स पुरुषार्थ प्रेरणा लेकर उपस्थित है। इस सन्दर्भ में उनके महाकाव्य ऋषभदेव और प्रस्तुत गीत-संग्रह 'घनमाला' से क्रमश: एक-एक उद्धरण दृष्टव्य हं, जिनमें कर्म में प्रवृत्ति की परस्परता से इनका औचित्य स्पष्ट हो जाता है—

१. भवबन्धन मं जकड़ी यह जीव समष्टि विवश
पुरुषार्थ करे तो हो सकती है मुक्त स्ववश।

२. सर्वथा दूर होगी जहाँ जो व्यथा,
इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा—
सार सिद्धि रह जाय, बह जाय संसार र!
पार कर पार रे!

इन गीतों को पढ़ने के पश्चात् अन्त में कहना समुचित लगता है कि प्रसाद की समरसता, पन्त की प्रकृति का नैसर्गिक सौन्दर्य, निराला के बादलों की क्रान्ति,

महादेवी की वेदना शक्ति और चन्द्रप्रकाश जी की तत्सम प्रधान शैली समन्वित रूप में इन गीतों की प्राणशक्ति है। नि:सदेह कुँवर चन्द्रप्रकाश सिह जी ने 'छाया' को वाद, समर्थन व काल के दायरे स बाहर रखा और सदी के अन्तिम दशक तक अनुभूति अभिव्यक्ति तक छायावादी प्रवृत्तियाँ का निर्वहन किया है।

प्रो. विनय कुमार सिह
आचार्य
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्राक्कथन

यह असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि आज के हिन्दी के आचार्य प्राय: यह मानने के लिए बाध्य हो रहे हैं कि महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह छायावाद के अन्यतम उन्नायक कवि हैं। कुँवर जी ने बारह वर्ष की अवस्था में सन् 1922 ई0 में अपनी पहली कविता रच कर हिन्दी-साहित्य में प्रवेश किया था। इसके बाद वे सीतापुर में रहते हुए 'सनेही-मंडल' में सम्मिलित हुए थे और उन्हीं के प्रभाव में रहकर कविता लिखकर कवि मन्त्रों पर कविता पाठ करते थे और उस युग की प्रवृत्ति के अनुसार घनाक्षरी, सवैया, छन्द लिखते और समस्यापूर्तियों में सिद्धहस्त रहे थे। उनके कवि-जीवन का प्रारम्भ एक छन्दकार के रूप में हुआ था, परन्तु धीरे-धीरे छायावादी कवियों की कविताएँ पढ़कर उनका झुकाव छायावाद की ओर बढ़ रहा था। अब हिन्दी का छन्दकार कवि गीतकार हो चला था। हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पूर्व ही 'माधुरी' में उनके छन्द और गीत छपने लगे थे, परन्तु सन् 1931 ई. में जब वे निराला के सम्पर्क में आए तो वे पूरी तरह से छायावाद के कवि बन गए थे। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि निराला के सम्पर्क में आने के पूर्व वे निराला, प्रसाद, पन्त आदि कवियों के कविता-संग्रह पढ़ चुके थे। कुँवर जी जब पहली बार निराला जी से मिले थे तब कहा जाता है कि निराला जी ने कुँवर जी से पूछा था कि आपका शुभ नाम क्या है? और कहाँ से आ रहे हैं? कुँवर जी ने कहा था मैं चन्द्रप्रकाश सिंह, सीतापुर से आया हूँ। तब निराला ने कहा था, ''आओ बैठो। मैं स्वयं आपसे मिलना चाहता था। अच्छा लिखते हो। देखो मैं इस समय 'माधुरी' में छपा आपका ही गीत पढ़ रहा हूँ।'' इस परिचय के बाद चन्द्रप्रकाश सिंह उसी होटल में निराला जी के बगल में कमरा लेकर रहने लगे थे।

कुँवर जी राष्ट्रीय-भावना के कवि हैं। इसीलिए निराला की कविताओं के प्रति उनका आकर्षण अधिक था। कुँवर जी का कहना था कि निराला की 'जागो फिर एक बार' तथा 'बादल राग' से मैं बहुत प्रभावित था। इन दोनों कविताओं

की ओजस्विता तथा तेजस्विता से मैं अभिभूत हो चुका था। ये दोनों कविताएँ तथा निराला की तीसरी कविता 'भर देते हो' वे बड़ी भाव-तल्लीनता से पढ़ते थे। कई बार हमारे जीवन में ऐसे अवसर आए हैं, जब हम उनके निराला-प्रेम से भाव-विभोर हुआ हूँ। एक बार कुँवर जी मेरे साथ मेरे गाँव गए थे। उस यात्रा में कुँवर जी के बड़े बेटे डॉ. रविप्रकाश सिंह हमारे साथ थे। हमारे गाँव पहुँचने के पहले हम सभी कुँवर जी के साथ निराला के गाँव पहुँचे थे। निराला के गाँव में जब हम सब निराला के घर पहुँचे थे तब कुँवर जी ने अपनी टोपी सिर से उतारी थी और वहीं जमीन पर साष्टांग प्रणाम के लिए लेट गए थे और पाँच मिनट लेटे रहे थे। निराला के प्रति किसी महाकवि की यह प्रणति उसकी श्रद्धा, भाव का चरम निदर्शन था। निराला के प्रति कुँवर जी सदैव विनत रहे हैं।

अब यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि निराला कुँवर जी के काव्य-गुरु रहे हैं। उनके काव्य पर निराला की अमिट छाप है। कुँवर जी ने निराला के सम्पर्क में आने के बाद राष्ट्रीय कविताएँ लिखने के साथ-साथ अब उन्होंने गीत रचना के प्रति पूर्णतया समर्पित हो गए थे। अब उनके गीत निराला के साथ-साथ 'सुधा' तथा 'माधुरी' नामक पत्रिकाओं में छपने लगे थे। वे अब निराला के बाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गीतकार कवि बन चुके थे। छायावाद के उत्कर्ष काल सन् 1931 ई. से लेकर सन् 1938 ई. तक रचे गए गीतों का उनका पहला गीत-संग्रह गीतिका (1936) के प्रकाशन के मात्र छह साल बाद सन् 1942 ई. में 'मेघमाला' के नाम से हिन्दी जगत् के सामने आ गया था। उनके इस गीत-संग्रह में कुल 108 गीत संकलित हैं। इनमें छायावाद युग का सम्पूर्ण काव्य-वैभव अपने चरम पर है। मेघमाला (1942) के बाद कुँवर जी द्वारा रचे गीत समय-समय पर प्रकाश में आते रहे हैं। कुँवर साहब के गीतों का अन्तिम गीत-संग्रह 'ऋतम्भरा' के नाम से सन् 1978 ई. में प्रकाशित हुआ था। सन् 1978 ई. में प्रकाशित इस गीत-संग्रह के बाद भी वे निरन्तर गीतों का सृजन मृत्युपर्यन्त करते रहे थे। इस काल खंड में लिखे जानेवाले गीतों में भी छायावाद की वही भाव-भूमि अपने जीवन्त रूप में पाई जाती है। 'ऋतम्भरा' (1978) के बाद रचे गए उनके गीत प्रकाशन की बाट जोहते रहे हैं, परन्तु उनका प्रकाशन नहीं हो सका। हमने उनकी काव्य-साधना की ग्रन्थावली के प्रकाशन के क्रम में जब उनके संग्रहालय का अवगाहन किया तब पता चला कि उनके गीत ऐसे हैं, जिनका प्रकाशन आवश्यक है। इसलिए हमने उनके द्वारा रचे गए शेष गीतों

के प्रकाशन की एक कार्य-योजना तैयार की और उनके द्वारा रचे गए कुल 75 गीतों का एक गीत-संग्रह 'घनमाला' (2022) का संकलन हिन्दी जगत् को सौप रहा हूँ।

'घनमाला' महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की काव्य-साधना का अन्तिम गीत-संग्रह है इस गीत-संग्रह का प्रकाशन भारत की स्वतन्त्रता के अमृत महोत्सव वर्ष में किया जा रहा है। इसमें कुल 150 गीत संकलित हैं। इन 150 गीतों में 75 गीत प्राय: सन् 1978 ई. के बाद रचे गए हैं। इन गीतों में हमें छायावाद युग के गीतों के वही भाव मिले जो छायावाद के उत्कर्ष काल में रचे गए गीतों में मिलते हैं। इसीलिए हमने कुँवर जी को छायावाद का अन्तिम कवि माना है और उनके शताब्दी न्यासी कवि व्यक्तित्व में जीवन के अन्तिम क्षणों तक छायावादी भाव-भूमि की सन्निहित देखकर हमने उन्हें छायावाद के उन्नायक कवि की उपाधि से अलंकृत किया है, परन्तु हिन्दी जगत् द्वारा निराला और कुँवर जी की उपेक्षा से आहत होता रहा हूँ। इसलिए स्थापनाओं को दरकिनार करते हुए अपने मनन और चिन्तन से छायावाद के विकास-क्रम को निर्धारित कर अपने अध्ययन को वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। छायावाद के विकास-क्रम के निर्धारण द्वारा यह कहने का प्रयत्न किया है कि निराला छायावाद के यदि एक छोर (आदि) पर संस्थित हैं तो दूसरे छोर (अन्त) में कुँवर जी विद्यमान हैं। छायावाद के पहले छोर को हमने छायावाद का प्रवर्तन काल और दूसरे छोर को छायावाद का उन्नयन काल माना है। इसीलिए हम निराला को छायावाद का प्रवर्तक तथा कुँवर जी को छायावाद का उन्नायक कवि मानते हैं।

'घनमाला' एक ऐसा गीत-संग्रह है जिसे दो खंडों में विभक्त किया गया है। पहले खंड में सन् 1978 ई. के बाद रचे गीत संकलित हैं और दूसरे खंड में छायावाद के उत्कर्ष काल में रचे गए गीत हैं। इस संकलन के दूसरे खंड में छायावाद के उत्कर्षकल के गीत इसलिए संकलित किए गए हैं, जिससे 'घनमाला' के पाठक पहले खंड तथा दूसरे खंड के गीतों को पढ़कर यह समझ सकें कि कुँवर जी की काव्य-साधना में छायावाद की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण काव्य-वैभव आदि से अन्त तक समान रूप से विद्यमान है। इस संकलन के बाद हम कुँवर जी के गीतों का एक ऐसा संकलन लाने का प्रयास करेंगे जिसमें कुँवर जी के समस्त गीत होंगे। यह संकलन इस बात का प्रमाण होगा कि कुँवर जी छायावाद के सर्वश्रेष्ठ गीतकार कवि हैं।

'घनमाला' का महत्त्व इसलिए अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि इसमें लगभग 50 छोटे-बड़े ऐसे गीत है जिसमें कवि की जीवन व्यापी कथा-व्यथा व्यंजित हो सकी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी का पाठक ही नहीं, हिन्दी के आचार्य भी इस गीत-संकलन के गीतों को काव्य-कला की कसौटी पर कसने का प्रयास अवश्य कर सकेंगे। हमने पाठकों की सुविधा के लिए 'घनमाला' के गीतों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया है—

(1) छायावादी भाव-भूमि के गीत।

(2) कवि-जीवन की कथा-व्यथा के गीत।

(3) विरह-वेदना के गीत।

(4) नवगीत शैली के गीत।

(5) यथार्थवादी गीत।

(6) अनुभूतिपरक मुक्तक।

इस गीत-संग्रह का पहला गीत 'जय हिन्दी' गीत है। इस गीत को यहाँ 'वन्दना' गीत के रूप में संकलित किया गया है। यह गीत कुँवर जी के दूसरे कविता-संग्रह शम्पा में संकलित है। शम्पा में संकलित इस गीत की रचना का एक इतिहास है। यह तथ्य किसी हिन्दी-प्रेमी से छिपा नहीं है कि सन् 1936 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का वार्षिक अधिवेशन काशी विश्वविद्यालय में आयोजित हुआ था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी चाहते थे कि इस अधिवेशन में हिन्दी को हिन्दुस्तानी घोषित किया जाए और देव नागरी लिपि में कुछ सुधार किए जाएँ। इस उद्देश्य से काका कालेलकर की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि-मंडल काशी भेजा गया था। इस प्रतिनिधि मंडल में भारत रत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद भी एक सदस्य थे। हिन्दी को हिन्दुस्तानी बनाए जाने के प्रस्ताव का विरोध करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास ने ऐसा ओजस्वी तथा तेजस्वी वक्तव्य दिया था, जिसके कारण यह प्रस्ताव पास नहीं हो सका था। कुँवर जी ने बाबू श्यामसुन्दर दास के इस वक्तव्य से प्रभावित होकर यह गीत रचा था। इस गीत में हमारे राष्ट्रगीत की समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसीलिए इस गीत को इस संग्रह में वन्दना गीत के रूप में स्थान दिया गया है।

छायावादी कवियों ने प्रेम और सौन्दर्य के साथ-साथ प्रकृति पर सर्वाधिक गीतों तथा कविताओं का सृजन किया है। इसीलिए छायावाद को प्रकृति-काव्य की संज्ञा भी प्रदान की गई है। हिन्दी-समीक्षा पन्त को प्रकृति का चतुर चितेरा कवि मानती चली आ रही है, परन्तु यदि छायावादी कवियों द्वारा प्रकृति पर रचे गए गीतों तथा कविताओं का तटस्थ रूप से अनुशीलन किया जाए तो पता चलेगा कि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ही छायावादी कवियों में प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। कारण यह है कि कुँवर साहब का प्रकृति चित्रण स्वानुभूतिपरक तथा स्वाभाविक है। इन गीतों की परिवेश-सजगता तथा मानवीय संवेदनाओं से उनकी तदाकारता में एक अद्‌भुत आलोक है। इन प्रकृति गीतों की जीवन्तता जिसे हम प्रकृति में चेतना का आरोप भी कह सकते हैं, ऋग्वेद के उषा वर्णन से प्रभावित प्रतीत होती है। भारतीय महीनों पर लिखे गए उनके गीत अतुलनीय हैं। कुँवर साहब के ऋतु सम्बन्धी गीत अपने पूरे परिवेश की सजगता तथा जन-जीवन से संयुक्त होने के कारण अपना प्रभाव छोड़ने में अधिक सफल हैं, छायावादी कविता में बादलों पर सर्वाधिक गीत तथा कविताएँ रची गई हैं। निराला को प्राय: बादलों का कवि कहा गया है, परन्तु कुँवर साहब ने बादलों पर निराला से अधिक गीतों तथा कविताओं की रचना की है।

निराला के काव्य में यदि बादल क्रान्ति का प्रतिमान बनकर आया है तो कुँवर जी के बादल इस जग के ताप-शाप हारी बनकर आए हैं। 'घनमाला' के दूसरे गीत में कवि की अध्यात्म-भावना विज्ञान का अतिक्रमण करती हुई प्रतीत होती है। विज्ञान मानता है कि बादल सागर से उठनेवाली भाप से आकार लेता है और पानी बरसाता है, परन्तु कवि मानता है कि, 'वे (बादल) सागर से नहीं, स्वर्ग से नवजीवन प्लावन' लाते हैं। कवि कहता है—'अति चेतन के शीर्ष-शिखर पर, इनका है अधिवास मनोहर'। ध्यातव्य है विज्ञान कभी काव्य का विषय नहीं बन सकता आध्यात्म तथा दर्शन काव्य से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता है। वहीं स्वर्ग से उतर कर वे 'धरित्री के प्रांगण पर सोम सुधा की वृष्टि करते हैं। कवि के बादल 'सत्य, वृहत, आनन्द रूप' हैं, वे ही ऋतु के संवाहक हैं। वे चरम सत्य के परम तीर्थ में' इस संसृति को नहलानेवाले हैं। बादलों की अलौकिकता को रेखांकित करते हुए कवि लिखता है—

अन्तर्ज्ञान गहन ये चिन्मय,
कर देंगे जीवन अकुतोमय,
असत्, तमस पर और मृत्यु पर,
जय पा नित नव सरसाएँगे।

प्रकृति पर चेतना के आरोप का यह गीत सर्वात्मवाद का सर्वोत्तम उदाहरण है। ये चिन्मय बादल एक अपराजेय योद्धा की भाँति 'असत, तमस पर और मृत्यु पर' विजय प्राप्त कर, वे इस जीवन को निर्भय कर देंगे। 'अकुतोमय' शब्द द्वारा निर्भय बनाना ही इस संसृति को अजातशत्रु बनाना है। यहाँ बादलों में चेतना के आरोप द्वारा बादलों के मानवीकरण की चेतना इस गीत को अमर बनाती है।

इसी क्रम में यहाँ कुँवर जी द्वारा 'नवगीत शैली' में रचे गए एक गीत का विश्लेषण देना अनिवार्य समझ रहा हूँ। हिन्दी में आदिकाल से नारी के सौन्दर्य पर असंख्य पंक्तियाँ रची जा चुकी हैं, परन्तु नारी का रूप और सौन्दर्य आज भी अपनी सम्पूर्णता में आँका नहीं जा सका है। इसी विवशता का उल्लेख करते हुए बिहारी ने लिखा था कि, ''लिखन बैठि जाकी सबी गहि-गहि गरब गरूर , भए न केते जगत् के चतुर चितेरे कूर। छायावाद के प्राय: सभी कवियों—निराला, प्रसाद, पन्त तथा महादेवी वर्मा ने प्रेम और सौन्दर्य पर जमकर लिखा है, परन्तु कुँवर जी द्वारा नारी के रूप और उसकी शारीरिक कान्ति तथा तरुणाई से बेसुध तरुणी की अंग-भंगिमाओं का यह गीत कवि की सौन्दर्यांकन की कला का अन्यतम उदाहरण है—

रूप वह शिशिर-सुहानी धूप !
सरसों के फूलों-सी जगमग
तन की कान्ति अनूप !
अंग-अंग में बलखाती-सी थी बेसुध तरुणाई,
लहर उठाती ज्यों गेहूँ के खेतों में पुरवाई,
अथवा जैसे गन्ध लुटाती फागुन की अमराई--
चकित दृष्टि कुन्दों की सुषमा-सरि
की थी प्रतिरूप।
चिकने काले घुँघराए आगुल्फ विलम्बित केश,
मानों निशि ने जीत लिया हो दिन का ज्योतिर्देश,
अवगुंठन रचता था शशि का नित नूतन परिवेश-
हाय कहाँ वह गया
रह गया मैं स्मृतियों का स्तूप।।

नारी का रूप प्रकाम्य है। वह परमपिता परमात्मा का रूप है। इसे ही हम नारी की सुन्दरता कहते हैं। निराला लिखते हैं कि, ''सुन्दर को सभी आँखें देखती हैं, उसे अपना सर्वस्व दे देती हैं। क्यों देखती हैं, क्यों देती हैं, इसका वहीं

कारण है जो जलाशय की ओर जल के बहाव का।'' परन्तु नारी के रूप की इस प्रकाम्यता से आगे बढ़कर कवि कहता है कि रूप शिशिर ऋतु की सुहानी धूप है। रूप में एक अलौकिक सुखदाई ऊष्मा होती है जो परम सुहानी है। तरुणाई में नारी की शारीरिक कान्ति सरसों के फूलों की भाँति जगमग करनेवाली होती है। तरुणी की शारीरिक कान्ति के लिए 'सरसों के फूलों' सी जगमग उपमान सर्वथा अनूठा और अनछुआ है। सरसों के फूल घने कुहासे में भी अपना आलोक बिखेरते रहते हैं। नारी की इसी कान्ति के कारण कहा जाता है कि यह लड़की ऐसी है कि रात में घर में दिया नहीं जलाना पड़ेगा। नारी तमसो मा ज्योतिर्गमय का प्रतिरूप है। 'अंग-अंग में बलखाती तरुणाई का उपमान भी उतना ही नया और अनूठा है। तरुणाई के कारण तरुणी की अंग-भंगिमाओं का उपमान है' लहर उठाती ज्यों गेहूँ के खेतों में पुरवाईं । यहाँ धान के खेतों में पुरवाई द्वारा लहर उठाने की बात नहीं कही गई है। कारण है कि शिशिर-ऋतु में धान की खेती नहीं, गेंहूँ की खेती होती है। तरुणाई का ऐसा चाक्षुष बिम्ब अपने आप में अनूठा है। कवि कहता है—'अथवा जैसे गन्ध लुटाती फागुन की अमराई। यह दूसरा उपमान स्थूल के लिए सूक्ष्म उपमान है, परन्तु इस सूक्ष्म उपमान की अनुभूति घ्राण और त्वचा से होती है। कारण यह है कि अमराई की गन्ध पवन के सहारे फैलती है। इसलिए इसका संस्पर्श भी होता है। कवि आगे कहता है कि जैसे कुन्दों से खिले हुए सरोवर की सुषमा मोहक होती है, उस तरुणी का रूप उसी के अनुरूप है। अन्तिम अनुच्छेद में तरुणी के नख-शिख का वर्णन है, जिसने कवि के लिए अपने अवगुंठन में शशि का एक नया लोक ही रच दिया था। परन्तु जब वह रूप जीवन से चला गया तो अब वह स्मृतियों का स्तूप मात्र रह गया है। रूपवती तरुणी इस जग में दुर्लभ है। है तो वह स्मृतियों में ही रहती है।

इसी क्रम में मैं कुँवर जी के प्रकृति-चित्रण के एक ऐसे गीत पर विचार करना चाहता हूँ जो भारत के ऋतुचक्र से सम्बन्धित है। हमारे देश का ऋतु चक्र (ऋतु परिवर्तन) विश्व विख्यात है। हमारे कवियों ने षटऋतुवर्णन तथा भारतीय महीनों के आधार पर जो प्रकृति चित्रण किया है वह अतुलनीय है। हम सभी जानते हैं कि माघ के बाद फागुन का महीना आता है जिसके आगमन की सूचना हमें बसन्त के आगमन से मिलती है। माघ महीने में जब बादल छाते हैं, और घना कुहरा पड़ता है, तब चारों ओर घना अन्धकार-सा छा जाता है। वन, बाग,

हार सब तिमिराच्छन्न हो जाते हैं। इस स्थिति में सर्दी इतनी पड़ती है कि दिन ठंड़ के कारण ठिठुर जाते हैं। कुहरे के कारण कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता है। इस घने कुहरे में खेतों में खिले हुए सरसों के फूल ही अपनी पीतिमा के कारण दूर से दिखलाई पड़ते हैं। कवि की कल्पना है कि सरसों के फूलों की किरण-ज्योति मानों इस ठिठुर रहे दिन (संसार) को ठिठुरन से रक्षा के लिए बसन्त को पाती लिखती है। अपनी व्यथाएँ हरने का आमन्त्रण भेजती है। प्रकृति के इस आह्वान का क्या प्रभाव होता है, वह इस गीत में देखा जा सकता है—

दिन ठिठुर रहा, कुहरे के—
बादल छाए।
वन, बाग, हार सब हैं, घन तिमिर छिपाए।
सरसों के फूलों की यह टिम-टिम बाती,
है, किरण ज्योति की केवल वही जगाती,
वह भेज रही लिख-लिख वसन्त को पाती।
आओ हम सब मिल—
जग की हरें व्यथाएं।
आह्वान सुना, ज्वाला किसलय बन जागी,
ऊर्जित पलाश ने वन में आग लगा दी,
बेला ने अपनी विगल हँसी बिखरा दी,
मंजरियों ने सौरभ के गीत सुनाए।

इस गीत को छायावाद का सर्वश्रेष्ठ गीत कहा जा सकता है। ऐसा गीत हिन्दी के छायावादी युग में आज तक नहीं रचा जा सका। यहाँ प्रकृति में चेतना का आरोप है। मानवीकरण के सौन्दर्य का संश्लिष्ट बिम्ब कवि के काव्य वैभव का उत्कृष्ट उदाहरण है। भारत का ऋतु परिवर्तन प्रकृति परिवर्तन में साकार होता है। माघ महीने में पतझड़ और पतझड़ के बाद किसलयों का वृत्त पर आना एक स्वाभाविक क्रम है। कवि कल्पना करता है मानो सरसों को फूलों की किरण—ज्योति का पत्र पाकर बसन्त जग की व्यथा हरने के लिए ज्वाला बन जाता है और वही ज्वाला ऊर्जित होकर पलाश के फूलों के खिलने से जैसे वह वन अग्नि बनकर धधक उठती है। जब इस अग्नि ने संसार की ठिठुरन हर ली तब बेला के फूलों के रूप में चतुर्दिक् प्रसन्नता का प्रसार हो जाता है। इस गीत की सांगता कवि-कल्पना का अच्छा उदाहरण है। कुँवर

साहब छायावादी कविता को उषा के समान चिर नवीन मंगल क्रान्ति मानते हैं। कवि का विश्वास है कि छायावादी कवियों द्वारा जैसी कविताओं का सृजन किया गया है, वैसी कविताएँ हिन्दी की किसी काव्य-प्रवृत्ति में नहीं रचीं जा सकी हैं, परन्तु कुण्ठाओं की कोठरियों के अधिवासी, ये अन्धकार जीवी बर्बर, निर्लज्ज नंगे (पत्रहीन) हिन्दी के समीक्षक छायावाद की इस मंगल क्रान्ति को नहीं समझ सके। कुँवर साहब छायावाद के विरोधी आचार्यों को देख चुके थे। उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे रस-ग्राही आचार्य को कक्षा में छायावादी कवियों को खुलेआम गाली देते सुना था, परन्तु अपने आचार्य का प्रतिवाद करने का साहस नहीं कर सके थे। दुखद यह कि आचार्य शुक्ल के बाद भी छायावादी कविता को समुचित आदर नहीं मिला अब अवसर पाकर जब स्वयं छायावाद को चरम तक पहुँचा चुके थे तब छायावाद के आलोचकों पर प्रहार करते हुए लिखते हैं—

कुंठाओं की कोठरियों के अधिवासी,
सन्त्रासों के श्वापद चिर तिमिर-विलासी,
है जिन्हें आत्म निर्वासन की प्रिय फाँसी,
वे त्रपाहीन जन पत्रहीन बन भाए।
वे देख न पाए मंगल क्रान्ति उषा-सी-
स्वर्णिम किरणों से ये चर-अचर नहाए।

कवि कहता है कि छायावादी कविता उषा के समान चिर नवीन मंगल क्रान्ति है, जिसकी स्वर्णिम किरणों से सम्पूर्ण चर-अचर अनुरंजित है। परन्तु हिन्दी समीक्षा संकुचित मनोवृत्ति के कारण कुण्ठाग्रस्त है।

छायावाद के विरोधियों पर इससे करारा प्रहार आज तक किसी भी आचार्य ने नहीं किया। आज यदि आचार्य शुक्ल जीवित होते तो उन्हें याद आ जाता कि छायावादी कविता का विरोध करना तथा छायावादी कवियों को गाली देने का परिणाम क्या होता है?

प्रेम और सौन्दर्य तथा प्रकृति सौन्दर्य के गीतों के अतिरिक्त 'घनमाला' में कवि की व्यथा-कथा के गीत पर्याप्त संख्या में संकलित हैं। इन गीतों में अधिकांश गीत-कवि की विरह-वेदना के गीत हैं। इन्हें हम कवि के वेदना-दर्शन के गीत कह सकते हैं। परन्तु यदि हम प्रसाद के विरह-वेदना के गीतों तथा कविताओं से कुँवर जी के गीतों और कविताओं की तुलना करते हैं तो हमें पता

चलता है कि यदि प्रसाद के विरह-वेदना के गीत परकीया प्रेम के गीत हैं तो कुँवर जी के गीत स्वकीया प्रेम के विरह-वेदना के गीत हैं। इसके पहले निराला जी भी अपनी पत्नी के वियोग में विरह-वेदना के गीत रच चुके थे। प्रसाद की विरह-वेदना एक ऐसी प्रेमिका की विरह-वेदना की व्याकुलता में रचे गए हैं जो उनकी प्रेमिका तो है, पर उनकी परणीता कदापि नहीं है। 'आँसू' प्रसाद की विरह-व्यथा का सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसे छायावादी-समीक्षा में पर्याप्त महत्त्व मिल चुका है। प्रसाद के 'आँसू' काव्य का आलम्बन वह है जिसकी उज्ज्वल गाथा कवि गाना नहीं चाहता है। वह, वह है जो आलिंगन में आते-जाते मुसकराकर भाग जाता है। इसके विपरीत कुँवर साहब के विरह-व्यथा के गीतों का आलम्बन वह है, जिसे कवि अपनी बाहों में बाँधकर बरसों की 'विरह-बढ़ी आहें डुबा देता है।' वह ''वासना की धृति थी। पूर्णतम लावण्य की कृति थी।'' प्राण प्रिय के प्रणय की सृति-सरित वामा थीं' । वह कवि की प्राण-प्रिया पत्नी ही तो है जो उषा-सी जीवन-गगन में उगी थी और सन् 1978 ई. तक उसका साथ ही नहीं दिया 'उसी ने जीवन का सारा गरल पिया था और उसी ने ही जीवन की सारी व्यथा सही थी।'' ऐसी प्रियतमा पत्नी के वियोग में कवि यह गीत न रचता तो उसे प्रेम और सौन्दर्य का पुजारी कवि कैसे कहा जा सकता था।

कैसे कटे, कैसे कटे !
तिमिरमय यह रात
कैसे कटे, कैसे कटे !
देह मन का ताप
कैसे घटे कैसे घटे !
स्मृति-जड़ित है देश, दिशि, आकाश,
बना योगी विरह-दग्ध पलाश,
प्राण में है पपीहे का वास-
नाम प्रिय का रटे,
कब तक रटे कैसे रटे।
गूँजते हैं पिकी, शुक के गान,
चल रहे हैं मंजरी के वाण,
कौन करता अनवरत सन्धान,

विषमयी यह वृष्टि धारासार?
तिमिर का आरोप कैसे हटे,
कैसे छँटे कैसे छँटे।

मैं यहाँ अब विस्तार भय के कारण कवि के विरह-वेदना के गीतों की व्याख्या नहीं करूँगा उनका विश्लेषण भी नहीं और न ही उन गीतों की एक-एक या दो-दो पंक्तियाँ देकर सन्तोष कर लेना चाहता हूँ। इसलिए विरह-वेदना के कुछ गीत पाठकों की सुविधा के लिए अवश्य देना चाहूँगा। अपने प्रिय के वियोग में संसार में कुछ भी बदलता नहीं दिन वही हैं, रातें वही हैं, ऋतुओं का क्रम भी वही रहता है। इस बात का ज्ञान सभी को रहता है, परन्तु—

दिन हैं वे ही, वे ही रातें,
ऋतुओं का क्रम भी है, वैसा,
सूखा-सूखा, अतिशय नीरस,
सब-कुछ लगता उजड़ा जैसा।
मेरे जीवन की सुख-समष्टि-
सब गई तुम्हारे साथ आह।
धौंकनी-सदृश आती - जाती,
हैं साँसें, अब जीवन कैसा ?

अब केवल प्रिय की स्मृतियाँ धधकते अंगारे की तरह आती हैं, और—

धधकते तुम्हारी स्मृति के
जो अंगारे।
वे ही बन जाते हैं
निशीथ में तारे।
मैं उन तारों को गिन, गिन
रात बिताता।
मेरे जीवन में नहीं प्रात
अब आता।
कोई आकर है प्राणों में
कह जाता।
आ रहे मिलन के दिन फिर
निकट तुम्हारे।

मधु अमृत किरणवर्षी वे दिन सब बीते,
मिल गए धूल में अपने सब मन चीते।
है नियति घोर तम चारों ओर पसारे।
धधकते तुम्हारी स्मृति के, जो अंगारे।
वे ही बन जाते हैं निशीथ में तारे।

तब प्रिय कर ही क्या सकता है—

पीता हूँ पल - पल
ज्वलित हलाहल-हाला ।
कर दिया तुम्हारी सुधि ने
है मतवाला।
एकाकी जीवन, शयन
कुटिल काँटों का-
पर्याय बन गया है
निर्मम घातों का-
टूटता नहीं क्रम अब
तममय रातों का-
जलती है बाहर-भीतर-
दु:सह ज्वाला।
दहकते दृष्टि ये तारों के अंगारे,
क्षण भर भी आते पास न स्वप्न तुम्हारे।
परिधान देह का रहूँ कहाँ तक धारे,
कब तक मैं पीता रहूँ,
हलाहल - हाला।
पीता हूँ पल-पल ज्वलित हलाहल-हाला।

कवि इस तथ्य-सत्य से भली-भाँति अवगत है कि—'जो गया, गया न आएगा/ किन्तु अन्तर शान्ति न जगाएगा।/बुझ गई है जिजीविषा मेरी—/' कौन यह ज्योति अब जगाएगा'/ तो भी वह अपनी प्रियतमा से मिलना चाहता है। वह कहता है कि, ''स्वप्न में ही कहो,/कहाँ हो तुम?/मुझको भी ले चलो,/जहाँ हो तुम।/ सहज जीवन, नहीं रहा मुझको। मृत्यु में ही मिलो, मिलो तो तुम।'' निराला भी अपनी पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट कर चुके हैं—

एक बार भी यदि अजाना के,
अन्तर से उठ आ जाती तुम,
एक बार भी प्राणों की तम-
छाया में आ कह जाती तुम।
सत्य हृदय का अपना हाल-
कैसा था अतीत वह, अब यह,
बीत रहा है कैसा काल?
मैं न कभी कुछ कहता,
बस तुम्हें देखता रहता।

यह सच्ची, सही तथा स्वाभाविक वेदना है। महाकवि तुलसीदास के राम भी सीता जी का वियोग नहीं सह सके। वे पागलों की भाँति जड़-चेतन तथा वन्य पशुओं से पूछते फिरते हैं कि क्या तुमने मेरी प्राण-प्रिया मृगनयनी सीता को कहीं देखा है? ऐसी स्थिति में विरही कवि की खोज स्वाभाविक ही है—

खोजता हूँ,
यशोधरा-सी धवल वह दृष्टि,
खोजता हूँ,
कल्पलतिका का सहज आश्लेष—
खोजता हूँ,
चाँदनी-सी वह निरन्तर सृष्टि।

कवि अब अपने शेष जीवन को अपनी सुखद स्मृतियों के सहारे बिता रहा है। प्रिय की स्मृति के धधकते अंगारे ही रात के तारे बन जाते हैं, फिर भी कवि उन्हीं स्मृतियों में खोया रहता है। इसी भाव-दशा में कवि को ऐसा लगता है, जैसे—''कोई आकर है प्राणों में/ कह जाता। आ रहे मिलन के दिन फिर, निकट तुम्हारे।

जब विरह वेदना कुछ शान्त होती है तो प्रेमी अपने प्रिय को आध्यात्मिक आवरण देकर उसका नित्य सानिध्य चाहता है क्योंकि उसके अतिरिक्त उसका ध्रुव तारा कोई दूसरा नहीं है—

ओ मेरे ध्रुव तारा ।
सूख गई जीवन के मरु में
अन्तर की रसधारा ।

स्नेहसिक्त कर दो सब बन्धन,
वंचित रहे न बुझा हुआ मन,
चरम निशित सुधियों के—
दंशन की हो मधुमय कारा।
अब विश्लेष नहीं पता झिल,
पथ न कभी हो मेरा पंकिल,
करो प्रकाशित कण-कण तिल-तिल,
मेरे तुम्हीं सहारा।

हिन्दी-जगत् में ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है, जो लोग इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि कुँवर साहब का साहित्यिक जीवन संघर्षमय रहा है। इनमें वे लोग भी सम्मिलित हैं जिन्हें कुँवर जी ने विश्वविद्यालयों के सर्वोच्च पदों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह तो प्राय: सभी जानते हैं कि वे युवराज दत्त महाविद्यालय लखीमपुर खीरी को छोड़कर पहली बार सन् 1958 ई. में एम.एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा, गुजरात के हिन्दी विभाग के प्रथम आचार्य नियुक्त हुए थे और अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश के इस विश्वविद्यालय को एक सीमित अवधि में देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया था, परन्तु वे अधिक दिनों तक इस विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य-पद पर नहीं रह सके थे। उन्हें पाँच-छह वर्ष की सीमित अवधि में बड़ौदा विश्वविद्यालय छोड़ने के लिए बाध्य किया गया था। इसके पश्चात उन्होंने सन् 1965 ई. में जोधपुर विश्वविद्यालय राजस्थान के हिन्दी विभाग के आचार्य पद का दायित्व सँभाला था। वे यहाँ भी अधिक समय तक नहीं रह सके। यहाँ वे केवल चार वर्ष तक ही रह सके। इन विश्वविद्यालयों का आचार्य पद उन्हें विरोधों के कारण छोड़ना पड़ा था। इन विरोधों के अतिरिक्त उन्हें कविता के क्षेत्र में निरन्तर विरोध सहना पड़ रहा था। हिन्दी में उस समय तक वामपन्थियों का आधिपत्य जम चुका था। कुँवर जी सत् साहित्य के पक्षधर थे। वे साहित्येतर मतवाद को साहित्य का प्रदूषण मानते हैं। इसलिए संघर्ष होना स्वाभाविक था। साहित्य के मंचों पर भी उन्हें इन विरोधों का सामना करना पड़ता था, परन्तु वे अपने मत पर अडिग रहते थे। डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने लिखा है कि, ''मैंने देखा था, परिसंवादों में जब परम्परा पर चोट होती थी तो वे तिलमिलाकर खड़े हो जाते और विरोध करते।'' कुँवर जी न दैन्यम् न

पलायनम् के सिद्धान्त को माननेवाले थे। इसीलिए हिन्दी जगत् के विरोधों से वे विचलित नहीं हुए, परन्तु पत्नी के निधन के बाद वे अकेले पड़ गए थे। इसलिए निराला की भाँति साहित्य-जगत् का यह विरोध वाणी पाने लगा। इस स्थिति में उनका दर्द छलककर इस रूप में सामने आया—

दर्द ही दर्द बेदर्द मुझको मिला,
जिन्दगी का सुमन कंटकों में खिला।
वार पर वार झेला किया अनवरत,
शान्ति-सुख छोड़ मुझको हुए भूमिगत।
प्राण में मैं पपीहा बसाए हुए
घूँट पर घूँट विष जा रहा हूँ पिए ।
मैं जिया ताप की भट्ठियों में जिया,
अन्धड़ों में न बुझने दिया पर दीया।
दूर पर दूर होता किनारा गया,
मैं बहा किन्तु मझधार बन रह गया।
खे चलो, ले चलो डूबती है तरी,
जीर्ण है और है कोटि छिद्रों भरी।
अब न कोई सहारा कहीं शेष है,
देव ! कितना तुम्हारा अगम देश है।

कवि उच्चकोटि का आस्थावान वैष्णव भक्त था। इसलिए वह जीवन-साधना 'सार-सिद्धि' को छोड़कर सर्वस्व त्याग की परमपिता परमात्मा की शरण ग्रहण कर इस संसार को पार करना चाहता है—

पार कर पार रे!
ऊर्ध्व-पथ चढ़ रही,
बढ़ रही धार रे !
खुल दल कमल पर नवल प्रात: किरण,
सोहती, ध्वनित संगीत सुन मधुर स्वन,
पवन अनुकूल द्रुत चरण कर संवरण,
हार उर की, न उस पार नीहार रे !
रोध की, शोध निज बोध, मिथ्या कथा,
सर्वथा दूर होगी यहाँ जो व्यथा,

इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा-
सार सिद्धि रह जाए, बह जाए संसार रे !
पार कर पार रे! ऊर्ध्व-पथ चढ़ रही, बढ़ रही धार रे !

कुँवर जी ने कभी हार नहीं मानी। वे संघर्षरत रहकर भी काव्य-सृजन में लीन रहे और एक से बढ़कर एक काव्य-कृतियाँ प्रकाश में आती गईं। उनके जीवन की 'सार-सिद्धि' हमारे पास उनकी धरोहर है, जो काव्य-विमर्श की प्रतीक्षा में है।

महाकवि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने छायावाद को 'मंगल क्रान्ति उषा-सी' कहकर छायावादी कविता की चिर नवीनता का उद्घोष किया था। यह नूतन क्रान्ति केवल भावों की ही क्रान्ति नहीं है, यह क्रान्ति नूतन काव्य-भाषा की भी क्रान्ति थी। द्विवेदी मंडल के कवि विशेष रूप से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा आचार्य द्विवेदी यह अनुभव कर रहे थे कि हिन्दी की खड़ी बोली की कविता में ब्रजभाषा, उर्दू, बँगला तथा अंग्रेजी भाषाओं का-सा लालित्य नहीं आ सका है। उन्हें किसी महान कवि के आगम का इन्तजार था, जो अपनी काव्यभाषा से कविता को लालित्यमय बना सकेगा और इसके साथ ही वह हिन्दी कविता को हिन्दी के परम्परागत छन्दों से भी मुक्ति प्रदान कर सकेगा। हिन्दी कविता का यह परम सौभाग्य है कि उसे अधिक दिनों तक यह इन्तजार नहीं करना पड़ा। शीघ्र ही 'अहिन्दी' भाषा-भाषी प्रान्त में रह रहे महाकवि निराला ने सन् 1916 ई. में अपनी प्रथम कविता 'जुही की कली' के द्वारा हिन्दी कविता में नूतन भाव, नूतन भाषा, नूतन शैली, नूतन छन्द, नूतन अलंकार, नूतन काव्यरूप, नूतन बिम्ब तथा नूतन प्रतीक की जो क्रान्ति की थी वह हिन्दी कविता की मुख्य धारा सिद्ध हुई। आधुनिक कविता की यह क्रान्ति केवल भावों की क्रान्ति नहीं थी, मूलतः यह क्रान्ति थी काव्यभाषा की। महाकवि निराला ने छायावाद के लिए काव्यभाषा का जो स्वरूप निर्धारित किया था, काव्यभाषा का वही रूप छायावाद की प्रमुख कसौटी बना। काव्यभाषा का यह रूप है क्या? यदि हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि वह संस्कृतनिष्ठ प्रांजल काव्यभाषा है। वह भावानुरूपिणी काव्यभाषा है। इस काव्यभाषा का प्रधान गुण है, स्पष्टता, और शब्द तथा अर्थ का पूर्ण सामंजस्य, जहाँ शब्द प्रयोग में चरम मितव्ययिता, रूपक, उपमा आदि शाब्दिक सौन्दर्य और लालित्य में परम संयम। यह भाषा चाहे गद्य की हो चाहे पद्य की, अत्यन्त स्वच्छ, सटीक,

प्रसन्न और प्रांजल होनी चाहिए। यदि उसमें अलंकरण न हो तो भी उसमें नैसर्गिक सौन्दर्य होना परमआवश्यक है। इसी बात को लक्ष्य कर महाकवि पन्त ने लिखा था—''तुम बहन कर सको यदि जन-जन में मेरे विचार। वाणी मेरी तुझे चाहिए क्या अलंकार।'' निराला इन गुणों के साथ उसमें आधुनिक जवीन की जटिलताओं के उपयुक्त सूक्ष्मता औरी व्यंजकता का होना आवश्यक है। काव्यभाषा के ये सभी गुण निराला तथा कुँवर जी की काव्यभाषा में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इन दोनों कवियों में कुँवर जी निराला को पीछे छोड़कर बहुत आगे निकलने में सफल हो सके हैं। कुँवर जी लगभग 66-67 वर्षों तक काव्य-साधना में लीन रहे। इस लम्बी अवधि में वे एक क्षण के लिए छायावादी भाव-भूमि से डिगे नहीं। न उनकी अनुभूति चुकी और न उनकी काव्यभाषा डिगी। जब छायावाद के प्रमुख कवि—(1) निराला, (2) प्रसाद, (3) पन्त तथा (4) महादेवी वर्मा—पृथक्-पृथक् कारणों से छायावाद से पृथक हो गए थे, तब महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने छायावाद को शताब्दी व्यापी व्यक्तित्व प्रदान कर छायावाद की श्रेष्ठता का जयघोष किया था।

छायावाद अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा का काव्य है। यहाँ अनुभूति और अभिव्यक्ति का सौन्दर्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है कि यदि अनुभूति सुन्दर होगी तो उसका काव्य-शरीर सुन्दर होगा ही, परन्तु इन दोनों में अनुभूति ही प्रमुख है। कारण यह है कि इस काव्य-शरीर के भीतर से जो वस्तु झाँकती प्रतीत होती है, वह अनुभूति ही तो है। छायावादी काव्य जिस भाषा के आवरण में प्रकट होता है, उसका महत्त्व अनुभूति से कम नहीं है। इसीलिए काव्य को शाब्दिक कला कहा गया है। छायावाद ने जिस काव्यभाषा का आविष्कार किया था, वह काव्यभाषा छायावाद का पर्याय बनी रही। इसीलिए यदि किसी कवि के विषय में यह निर्णय करना हो कि वह कवि कब छायावाद में आया और कब छायावाद से पृथक् हो गया तो उसकी काव्यभाषा का अनुशीलन बड़े रोचक निष्कर्ष देता है। यदि हम प्रसाद की काव्यभाषा का अनुशीलन करते हैं तो हमें पता चलता है कि वे विकासात्मक काव्य-प्रतिभा के कवि हैं। उनकी काव्यभाषा में उत्तरोत्तर विकास देखा जा सकता है। वे ब्रजभाषा से प्रारम्भ कर खड़ी बोली में आते हैं। एक लम्बे समय तक वे खड़ी बोली का ब्रजभाषा करण करते रहे हैं। उनकी कविता में खड़ी बोली की परिष्कृत पदावली पहले पहल 'आँसू' के द्वितीय संस्करण

(1930) में निखार पाती है। इसलिए अनुभूति के अतिरिक्त यदि काव्यभाषा को कसौटी के रूप में स्वीकार किया जाता है तो छायावाद में प्रसाद का प्रवेश सही अर्थों में सन् 1930 ई. में माना जाना चाहिए। 'आँसू' के द्वितीय संस्करण के पूर्व वे पूरे तौर पर छायावादी कवि नहीं कहे जा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि आचार्य वाजपेयी अपने प्रिय कवि प्रसाद के प्रारम्भिक चरण में ही उनकी महानता के तत्त्व खोज लेते हैं। यह बात सभी स्वीकार करते हैं कि प्रसाद के भाव तथा उनकी भाषा द्विवेदी युगीन थी। उन्हें छायावादी अनुभूति बाद में मिली और उस नूतन अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में अधिक समय लगाना पड़ा।

नूतन अनुभूति के साथ परिष्कृत पदावली ही छायावाद की पहचान है। जब छायावादी परिष्कृत पदावली बदल जाती है तो काव्य-प्रवृत्ति बदल जाती है और यदि छायावाद की अनुभूति चुक जाती है तो या तो काव्य-साधना में विराम लग जाता है या छायावादी भाव-भूमि छूट जाती है। पन्त बड़ी धूम-धाम से 'पल्लव' के साथ सन् 1928 ई. में छायावाद में प्रवेश करते हैं और उतनी ही तेजी के साथ छायावाद का अन्त घोषित कर सन् 1932 ई. में 'गुंजन' देकर छायावाद छोड़कर चले जाते हैं। महादेवी वर्मा अनुभूति की जो थाती लेकर छायावाद में आई थीं, वह पूँजी जब सन् 1942 ई. तक आते-आते चुक जाती है तब वे अपनी 'दीपशिखा' (1942) जलाकर सदा-सर्वदा के लिए छायावाद का परित्याग कर देती हैं। निराला का भी कुछ ऐसा ही हाल है। निराला ने जिस नूतन भाव-बोध (अनुभूति) नूतन भाषा, नूतन शैली, नूतन छन्द, नूतन अलंकार तथा नूतन काव्य-रूप से हिन्दी कविता में युगान्तर किया था उनकी वह अनुभूति तथा उनकी वह काव्यभाषा 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' के बाद जब उनका साथ नहीं दे पाती तब वे छायावादी नहीं रह पाते। तब वे प्रगतिवाद, प्रयोगवाद , नई कविता आदि प्रवृत्तियों के प्रमुख प्रवर्तक बनकर सामने आते हैं। सन् 1942 ई. के बाद जो कवि अपनी अनुभूति और अपनी संस्कृतनिष्ठ प्रांजल पदावली के साथ सन् 1997 ई. तक छायावाद की उच्चतर भाव-भूमि पर स्थिर रहा उसकी अनुभूति और उसकी परिष्कृत पदावली में कोई अन्तर नहीं आया उसका नाम है महाकवि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह। कुँवर जी की न अनुभूति घटी और न ही उनकी काव्यभाषा की पदावली में कोई गिरावट आई। यदि सही अर्थों में देखा जाए तो उनकी अनुभूति और उनकी पदावली में उत्तरोत्तर विकास ही

होता गया है। सच बात यह है कि निराला ने छायावाद के प्रवर्तन के लिए जिस आदर्श काव्यभाषा को अंगीकार किया था, काव्यभाषा के उसी रूप से जुड़कर उसे अपनी प्रतिभा से निखारा और आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए काव्यभाषा का एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया। उनकी काव्यभाषा के निर्माण में संस्कृत वाङ्.मय का अभुतपूर्व योगदान है। उनके शब्द-प्रयोग में चरम मितव्ययिता है। उपमा, रूपक तथा सामासिकता में परम मितव्ययिता है। हमारी कसौटी पर काव्यभाषा की पूर्णता के सर्वोच्च निदर्शन कुँवर जी हैं।

महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह सन् 1931 ई. में निराला के सम्पर्क में आने के बाद छायावाद की जिस अनुभूति में पगे थे और अपनी अनुभूति के अनुरूप जिस काव्यभाषा का निर्माण किया था उसमें उत्तरोत्तर विकास ही होता गया। कुँवर जी की काव्यभाषा जिसकी विशेषता का उल्लेख आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने सन् 1960 ई. में किया था वह अन्त तक बनी रही। उन्होंने लिखा था कि, ''कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी परिष्कृत और प्रांजल पदावली है जो भाषा पर उनके अधिकार की ही नहीं उनकी गहरी पहचान की भी परिचायक है। हिन्दी काव्य में निराला की पद-रचना अपनी सामासिक शैली के लिए प्रख्यात है। थोड़े से चुने हुए शब्दों में गम्भीर और प्रशस्त आशय की अभिव्यक्ति उनकी काव्य-भाषा का गुण है। —कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के शब्द-प्रयोग निराला की शैली के हैं, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।'' कुँवर जी के शब्द-चयन और शब्द-प्रयोग को लेकर वाजपेयी जी कहते हैं कि, ''शब्दों के चयन में केवल अर्थ-प्रवणता ही एकमात्र विशिष्टता नहीं होती वरन् उच्चारण-संगति, भाव-संगति, प्रवहमानता आदि गुण भी अपेक्षित होते हैं। केवल कोमल कान्त पदावली भाषा प्रयोग की एक मात्र सफलता नहीं है, ऋजु-कुटिल नाना पथों से चलकर काव्य की पदावली अपनी भास्वरता प्राप्त करती है परन्तु साथ ही उसमें एक अन्तर्निहित सन्तुलन भी होना चाहिए नहीं तो वह बिखरी हुई वस्तु बन जाएगी। यहाँ भी कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह निराला की ही भाँति अपनी प्रयुक्त पदावली में एक स्पष्ट तराशकर प्रमाण देते हैं। वह तराश जो भाषागत विविधता में कलात्मक समरूपता लाती है।'' आचार्य वाजपेयी जी की यह टिप्पणी छायावादी कवियों की काव्यभाषा की वह कसौटी है जो छायावादी कविता की भाव-भूमि की परिचायक है। यहाँ कहना पड़ता है कि कुँवर जी की काव्यभाषा जो भावों के अनुरूप है, उन्हें छायावाद

का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करते हुए उन्हें छायावाद का उन्नायक कवि घोषित करने के लिए पर्याप्त है। कुँवर जी आदि से लेकर अन्त तक छायावाद की अनुभूति और छायावादी काव्यभाषा के समर्थ कवि रहे हैं। भाषागत विविधिता की इसी कलात्मक समरूपता की कसौटी पर 'घनमाला' के काव्य-सौन्दर्य का मूल्याँकन किया जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि छायावाद कविता के लिए नूतन अनुभूति और नूतन काव्यभाषा का होना एक अनिवार्य शर्त है। छायावाद के जिस-जिस कवि में इनमें से जब-जब एक भी तत्त्व घटा है, तब-तब वह कवि छायावाद से हटा है। छायावाद ने इसका दायित्व समालोचकों पर नहीं छोड़ा, उसने स्वयं इसका वेबाक निर्धारण किया है। जो आचार्य इस तथ्य की अनदेखी करते हैं, वही प्रसाद और पन्त को छायावाद का प्रवर्तक कवि घोषित कर अपनी 'पार्टीजन' समीक्षा का उदाहरण प्रस्तुत करते रहते हैं।

छायावाद के श्रेष्ठ कवियों ने भावानुरूपिणी काव्यभाषा का एक आदर्श रूप स्थापित किया था। जब-जब भाव (अनुभूति) बदले, भाषा बदलती रही है। यही कारण है लोकोन्मुखी भाव-भूमि की कविताओं की भाषा अपेक्षाकृत सरल रही है। इसका प्रमाण कुँवर जी की काव्य-कृति 'जीवन आस-पास' में संकलित कविताओं की भाषा है। यहाँ यथार्थ की अभिव्यक्ति है। इसलिए यहाँ की काव्यभाषा के शब्द-विन्यास तथा शब्द-चयन में कोई अलंकरण नहीं है। यह काव्यभाषा अपने स्वाभाविक रूप में प्रवहमान है। इस काव्य-कृति के छन्दों में भी परिवर्तन आया है। जो कविताएँ अतुकान्त हैं, वे सपाट बयानी तक पहुँच गई हैं। परन्तु इन कविताओं की लोकोन्मुखता नारेबाजी नहीं है। यहाँ दीन-हीन, साधन-विहीन तथा अपहृत सर्वस्वों के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त हुई है। ऐसी कविताओं में 'अमीनाबाद' कविता अपने शिखर पर है। इस कविता में दीन-हीन भिक्षुओं के प्रति गहरी सहानुभूति में एक ऐसा औदात्य है जो अन्यत्र दुर्लभ है। छायावादी कवियों का मानवतावाद इसी कोटि की कविताओं में मुखरित हुआ है। इन कविताओं की अनुभूति को उसकी सम्पूर्णता में, अभिव्यक्ति प्रदान करने में कुवँर जी की काव्यभाषा अतुलनीय है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कुँवर साहब के पास अनुभूति और अभिव्यक्ति के सामंजस्य का वह अक्षय कोश था जो कभी रिक्त नहीं हुआ। उन्होंने अपनी काव्यभाषा के द्वारा हिन्दी के शब्दकोश को परिपूर्ण करने की साधना की थी। उनकी कविता में सैकड़ों ऐसे भाव-व्यंजक शब्दों का विन्यास

हुआ है, जिनका शब्दार्थ हमारे जैसे सैकड़ों पाठकों को ज्ञात नहीं है। इसलिए कुँवर जी के शब्द-चयन का एक विश्वकोश तैयार किया जाना आवश्यक है। उन्होंने छायावादी काव्यभाषा का परिरक्षण ही नहीं किया, वरन् उन्होंने उसका व्यापक विशदन, परिष्करण और विस्तार भी किया है। उसे भावात्मकता के साथ जोड़ा। यही कारण है कि उनकी काव्यभाषा उनकी अनुभूतियों, उनके भावों तथा उनकी संवेदनाओं के वैविध्य को साकार करने में सफल है। 'घनमाला' की काव्यभाषा भावों के अनुरूप अपना रूप सँवारती है। काव्यभाषा के जिस रूप से निराला ने छायावाद का प्रवर्तन किया था, काव्यभाषा के उसी रूप का पूर्ण निदर्शन कुँवर साहब की कविताओं में साकार हुआ है। 'घनमाला' हिन्दी के आचार्यों के विमर्श के लिए हिन्दी-जगत् के आकाश में अपने बहुरंगी पंख पसार कर 'विचर' रही है—

विचर रही घनमाला।
उड़ती नभ में पंख पसारे
ज्यों खग पंक्ति अराला।
चित्र-विचित्र हो अंकित,
बहुरंगी किरणों से द्योतित,
यह सौन्दर्य गीतिमय, गतिमय,
किसकी है कृतिशाला।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-जगत् कुँवर जी के अन्तिम गीत-संग्रह 'घनमाला' का समुचित स्वागत करेगा।

—प्रो. शिवमोहन सिंह

अमृत महोत्सव वर्ष
शरद् पूर्णिमा 2021

खण्ड-1

जय हिन्दी, जय हिन्दी!
चिर-अभिनव भारतमाता के,
भव्य भाल की बिन्दी!

इसके वर्ण, रूप, रस के वश,
सूर-उदधि, तुलसी का मानस,
सन्त कबीर और मीरा की,

वाणी शुचि - जय हिन्दी!
छन्द, भाव, भाषा, रस-वैभव,
करते वृद्धि-सिद्धि कवि नित नव,
गुणागरी नागरी हमारी,
लिपि निरूपम-जय हिन्दी!

नन्ददास, रसखान, देव कवि,
घनानन्द, भूषण अमन्द छवि,
खुले, खिले अंचल-छाया में,
धन्य हमारी हिन्दी!

फैला देश-विदेश उजाला,
सुविदित पन्त, प्रसाद, निराला,
प्रेमचन्द ने जीवन डाला,
अमर हमारी हिन्दी!

बादल नए-नए आएँगे!
वे सागर से नहीं, स्वर्ग से,
नवजीवन प्लावन लाएँगे।

अति चेतन के शीर्ष-शिखर पर,
इनका है अधिवास मनोहर,
उतर धरित्री के प्रांगण पर,,
सोम सुधा ये बरसाएँगे।

सत्य, वृहत, आनन्द रूप ये,
ऋतु के संवाहक अनूप ये,
चरम सत्य के परम तीर्थ में,,
ये संसृति को नहलाएँगे।

अन्तर्ज्ञान गहन ये चिन्मय,
कर देंगे जीवन अकुतोभय,
असत् तमस पर और मृत्यु पर,
जय पा नित नव सरसाएँगे।।

आएँगे बादल दल के दल!
नील गगन सर में,
विकसेंगे श्यामल कंज पुंज अगणित कल।।

तप से ऊर्जित श्याम मेघ फिर,
आएँगे दामिनी सहित घिर,
छहर-छहर कर, घहर-घहर कर,
तप्त धरा कर देंगे शीतल।।

तोड़ तिमिर की दुर्गम कारा,
उतरेगी ज्योत्स्ना की धारा,
उर-उर के सीपी-सम्पुट में
लेंगे जन्म मुक्ति - मुक्ताफल।।

चिन्मय यह ऋतु-चक्र विवर्तन,
सत्य और ऋतु का अनुशासन,
बरसेंगे अविरत धरती पर,
धर्म - मेघ ये शुचि मंगल जल।।
आएँगे बादल दल के दल।।

लोचन भर-भर आए!
अलका का सन्देश सुनाने—
मेघ धरा पर छाए।।

विचर रहे ये शिखर-शिखर पर,
देख रहे दामिनी-नयन भर,
छान रहे सरि, सर वन, अम्बर,
मिला न वह-
जिसके कानों में दारुण व्यथा सुनाएँ।।

घूम नीर से मिला समीरण,
जड़-तत्वों के सन्निपात घन,
विरह, अमृत पी हुए सचेतन,,
जीवन में—
जग के खोए शत प्रेम बीज ले धाए।।

वहाँ कुंज में बैठी वामा,
अन्तर ज्वलित, तप्त तन, क्षामा,
श्वास शेष अब वह अभिरामा,,
कहती सखि !
वे दूत लौटकर नहीं सन्देशा लाए।।
लोचन भर - भर आए।।

खो गया हास तुम्हारा हाय।
कुटिल कंटक-वन में असहाय।।

शरद की ज्योत्स्ना का वह लास,
दिवस का मधुऋतु के उल्लास,
भरा था जिसमें हृदयाकाश—
हो गया सहसा तम में लीन,
काल के विप्लव में असहाय।।
बन गया है मरु सावन मास,
शेष बस ज्वालामय नि:श्वास,
और यह जीवन जला जवास—
रात फिर दिन गिनता निरुपाय।

रूप वह शिशिर-सुहानी धूप!
सरसों के फूलों सी जगमग
तन की कान्ति अनूप!

अंग-अंग में बलखाती-सी थी बेसुध तरुणाई,
लहर उठाती ज्यों गेहूँ के खेतों में पुरवाई,,
अथवा जैसे गन्ध लुटाती फागुन की अमराई—
चकित दृष्टि कुन्दों की सुषमा-सरि
की थी प्रतिरूप।।

चिकने काले घुँघराए आगुल्फ विलम्बित केश,
मानो निशि ने जीत लिया हो दिन का ज्योतिर्देश,
अवगुंठन रचता था शशि का नित नूतन परिवेश-
हाय कहाँ वह गया
रह गया मैं स्मृतियों का स्तूप।।

रंगों में यह निशा नहाई!
तुमने प्राणों में यह कैसी
दु:सह आग जगाई!
वर्णों के अर्णव में डूबे मेरे साँझ-सबेरे,
बहुरंगी ज्वालाओं के ये नहीं टूटते घेरे,
फिर भी अविश्रान्त तुम
भर-भर चला रहे पिचकारी!
शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध की
घन अवली घिर आई!
तुम मेरे मुख पर मलते हो जब किरणों की रोली,
जल, जल उठती है द्विगुणित हो यह अन्तर की होली,
निज आह्वान-तान से क्षण-क्षण कूक -हूक भर देते
नयनों में अबीर भर तुमने
छबि निज हाय! छिपाई!
कैसा दाहक दव प्राणों में युग-युग से जलता है,
इसकी छाया में रंगों का जग पलता-फलता है,
रूपों में अरूप! रंगों की निधियाँ तुमने खोलीं,
उनमें ही लगती है धरती
कण - कण आज समाई।
रंगों में यह निशा नहाई !

चली चटक पिचकारी!
प्राणों में तुमने यह कैसी
व्यथा जगा दी प्यारी!

दहक उठा अन्तर में मेरे यह पलाश-वन सहसा,
बौराए मन में रसाल का कुंज-पुंज है विलसा,
शुक, पिक, चातक की स्वरमयता रोम-रोम में हुलसी,
पीर-अधीर अबीर भरे दृग, हर ली सुध-बुध सारी।
रंगों की तरंग बनकर तुम प्राण ! चतुर्दिक् छाए!
नील, अरुण, घनसार, पीत के पार कहाँ हम जाएँ।
वर्णों के अर्णव में खेते हुए तरी तुम आए—
कहाँ तुम्हारा स्वप्न-सौंध वह प्रियतम! चिर श्रमहारी !
चली चटक पिचकारी!

फिर वह आया दिवस
डसा था जिसने मुझको व्याल- सा!

फैलाती धरती पर, नभ पर
ज्वालाओं का जाल - सा!
पिला रहा है फिर-फिर मुझको कालकूट के घूंट
दहन तुषानल का है क्षण भर मिलती कभी न छूट
यह सावन निदाघ-सा लगता,
दिन तम तोम घिरा,
और रात में नभ अशेष,
लगता अंगार भरा!

लट छिटकाए कृत्याओं-सी लगती सभी दिशाएँ,
दाहक पीड़ा के द्रव से हैं पूरित सभी शिराएँ!
एक सुधा का बिन्दु गरल का सिन्धु बना सहसा-
चला रही जर्जर जीवन पर—नियति कठोर कशा!
आएगा कब तक जीवन में दिन यह फिर-फिर व्याल-सा,
कब तक यह मुझको बाँधेगा ज्वालाओं के जाल-सा!!

हो गए ये बदरा बदराह!
बेदरदी घिर, घिर फिर-फिर ये
देते दु:सह दाह!

दिन को रात बनाते हैं ये,
आग लगाते आते हैं ये,
आँसू के सागर में मुझको,
आह! न मिलती थाह!

यह बिजुरी बेजार कर रही,
अंगारों की धार झर रही,
मुझे डुबाता आता है यह,
काला, काल - प्रवाह!

सकल दिशाएँ आँजन आँजे,
धरती धानी अम्बर साजे,
खिले कदम्बों के कुंजों की,
अब न मुझे सखि! चाह!!

हुआ है अश्रुमय यह ग्रीष्म-जीवन!
मिलेगा लौटकर अब क्या न वह क्षण!

तिमिर में खोजते ये नयन हारे,
न हैं पदचिन्ह भी मिलते तुम्हारे,
पपीहा प्राण का कब तक पुकारें-
दृगों में बस गया है शुष्क सावन!
जलाए दीप सुधियों के निरन्तर,
चला हूँ शूल-संकुल वन्य पथ पर,

मिला अवलम्ब का पर वह नहीं कर ,
न जीवन दीप में अब स्नेह का घन !
विगत के स्वप्न-धन से प्राण वंचित,
मिला आगत तिमिरमय ताप-भर्जित,
अनागत की निकट है सान्ध्य बेला,
न जिसमें कौमुदी का कान्त मधुबन !!
हुआ है अश्रुमय यह ग्रीष्म - जीवन !!

तपाओ और तपाओ बन्धु!
ग्रीष्म तुम जीवन के प्रतिरूप!
रहे शैशव से ही तुम साथ,
तप्त सैकत का मैं हूँ पान्थ,
जले पद, छाले पड़ते रहे,
मिला कोई न सरित, सर, कूप!

शरद की राका की मुसकान,
मिला क्षण भर को उसका दान,
सह न पाए तुम वह सुख-योग,
जेठ की दी फिर तपती धूप!

मिला यह एक तुम्हारा प्यार,
और अंगार और अंगार !
कृपणता लेश न तुम में शेष,
मित्रता के प्रतिमान अनूप !

तुम्हारे प्रति अनन्त आभार!
ग्रीष्म, तुम तपोमूर्ति साकार!

रसालों को रस दिया अनन्त,
किया बेला को सौरभवन्त,
मालती मुकुलों से सज गई,
घनों को धरती रही पुकार!

तपे तुम बन वृष के मार्तंड,
ज्वलित पौरुष के रूप प्रचंड
क्रान्ति की ज्वालाओं की उग्र,
लाल रसनाएँ में रहे पसार!

लू-लपट विकट तुम्हारा श्वास,
प्रभंजन क्षोभ - भरा उच्छ्वास,
स्वेद-श्रम वास तुम्हारा सुखद,
कर रहे अशिव अमंगल क्षार!

बादल घिर आए!
श्याम निशा का शीतल कोमल तरल स्पर्श लाए!
है झहर-झहर बूँदों की झीनी-झीनी,
विस्फुरित हो रही चपला की रंगीनी,
यह बहती है पुरवाई भीनी - भीनी,
माटी की सोंधी-सोंधी गन्ध जगाएँ!
है श्याम गगन, धरती श्यामा,
पावस मंगल गाती श्यामा—
किसकी वंशी ध्वनि गूँज रही,
घनश्यामरूप बादल छाए!

दृग रहें न सूखे,
तो धरती सावन है।
मन रहे न रूखे,
तो पग-पग मधुबन है।।

अन्तर का द्रव ही जीवन सरस बनाता,
उसकी वीणा पर नव-नव राग सजाता,
वह ही प्राणों का चातक बनकर गाता,
अमरत्व भरा वह विषमय संवेदन है।।

यह विरह-मिलन की गाँठ कसकती क्षण-क्षण,
है श्वास-श्वास में इस पीड़ा की ऐंठन,
दाहक निदाघ बन घिर-घिर आते हैं घन,,
मरु है, पर सागर का उसमें प्लावन है।।
दृग रहें न सूखे, तो धरती सावन है।।

बिदा माँगी आज प्रात:
कुन्द ने मुझसे,
चुन रहा था फूल
पूजा के लिए जब मैं—
वल्लरी पर आज केवल चार पुष्प खिले,
चतुर्वर्ग समान करते प्रेरणा का
दान उज्ज्वल शुभ्र !
कहा उसने— 'जा रहा हूँ सखे !
मैं अब—
तभी आऊँगा करेगा शिशिर
जब फेरा धरा पर फिर!
आज मानसरूप रथ पर निखिल जन के
आ रहा आरूढ़ होने के लिए मधुमास
गन्ध मधु से जाएँगे भर
सब दिशा आकाश!

सुलगती पलाश के वन-सा
जीवन होली आई!

रंग-बिरंगी मधु-स्मृतियों की चली चटक पिचकारी,
करक रहे बीते दिन नयनों में अबीर बन भारी,
तन तप, तप बन गया वेदना के केसर की क्यारी—
लिए उपायन अंगारों का होली यह फिर आई!

भिगो गया कोई गुलाल-से सहसा उर का अम्बर,
धधक उठा निशीथ में सूखे काठों सा यह अन्तर,
मन प्राणों को बेध गए ये कितने सौरभ के शर,
दग्ध कामनाओं की
रज, ले बही विकल पुरवाई!

फूलों में परिणित हुए गड़े जो काँटे,
काँटे सब मैंने फूल बना कर बाँटे!
इन काँटों में मैं बिद्ध हुआ हूँ जब-जब,
प्रभु की स्मृति पाथेय बनी है तब-तब!
काँटों-फूलों से मिला-जुला है जग सब,
काँटे तज मैंने फूल निरन्तर छाँटे!
काँटों में खिलता रहा फूल जीवन का,
काँटे करते श्रृंगार सदा इस वन का,
पर फूलों से ही भरा स्तवक है मन का
चुभ-चुभ फूलों का प्यार दे गए काँटे!
काँटों से पथ में मैं न कभी भी हारा
चिर अनवरुद्ध प्रवाहित जीवन की धारा,
तोड़ूँगा काँटों से काँटों की कारा—
बन जाएँ फूल जो वन्दनीय वे काँटे!
फूलों में परिणत हुए गड़े जो काँटे,
काँटे सब मैंने फूल बना कर बाँटे!!

धधकते तुम्हारी स्मृति के
जो अंगारे!
वे ही बन जाते हैं
निशीथ में तारे!
मैं उन तारों को गिन, गिन
रात बिताता!
मेरे जीवन में नहीं प्रात
अब आता!
कोई आकर है प्राणों में
कह जाता!
आ रहे मिलन के दिन फिर
निकट तुम्हारे!
मधु अमृत किरणवर्षी वे दिन सब बीते,
मिल गए धूल में अपने सब मन चीते!
है नियति घोर तम चारों ओर पसारे !
धधकते तुम्हारी स्मृति के, जो अंगारे !
वे ही बन जाते हैं निशीथ में तारे !

पावस ऋतु आई!
नभ के तरु पर श्याम घनों की
लतिकाएँ छाईं!

कभी मालती मुकुल बरसते,
यूथी के शुचि सुमन बिलसते!
चपला की चंचल बल्लरियाँ,
दिसि - दिसि, सरसाईं!
मन्द्र मृदंगों के ऊर्जित रव,
धरती के प्राणों में नव-नव
उतर रहे—उन्मद झोकों में बहती पुरवाई!
बूँदों की किरणों की क्रीड़ा,
बहती सरिताएँ में गत-व्रीड़ा,
कलित केतकी की कुंजों की
गन्ध अन्ध धाई!
पावस ऋतु आई!

फिर फिर आते शेफाली की
मधुर गन्ध के झोके !
कब तक उन स्मृतियों का प्लावन
यह दुर्बल मन रोके !
तम में उगा चाँद चौदस का
ले उस मुख का सपना
मेरे रोम-रोम को डसने लगा
विगत वह अपना !
वही शरद है, ज्योत्स्ना के अर्णव में
डूबा जग है,
किन्तु तिमिर से भरता जाता मेरा
जीवन-मग है !
अहोरात्र आनन्द चेतना से
वंचित है मेरे,
फिर भी शेफाली की सौरभ-
वात्या मुझको घेरे !

कैसे कटे, कैसे कटे!
तिमिरमय यह रात
कैसे कटे, कैसे कटे!
देह मन का ताप
कैसे घटे कैसे घटे !
स्मृति-जड़ित है देश, दिशि, आकाश,
बना योगी विरह-दग्ध पलाश,
प्राण में है पपीहे का वास—
नाम प्रिय का रटे,
कब तक रटे कैसे रटे!
गूँजते हैं पिकी, शुक के गान,
चल रहे हैं मंजरी के बाण,
कौन करता अनवरत सन्धान,
विषमयी यह वृष्टि धारासार?
तिमिर का आरोप कैसे हटे,
कैसे छँटे कैसे छँटे!

पीता हूँ पल - पल
ज्वलित हलाहल-हाला!
कर दिया तुम्हारी सुधि ने
है मतवाला!
एकाकी जीवन, शयन
कुटिल काँटों का—
पर्याय बन गया है
निर्मम घातों का—
टूटता नहीं क्रम अब
तममय रातों का-—
जलती है बाहर - भीतर
दु:सह ज्वाला!
दाहते दृष्टि ये तारों के अंगारे
क्षण भर भी आते पास न स्वप्न तुम्हारे,
परिधान देह का रहूँ कहाँ तक धारे-
कब तक मैं पीता रहूँ,
हलाहल - हाला!
पीता हूँ पल-पल ज्वलित हलाहल-हाला!

खोल रुद्ध गवाक्ष आते हो स्वयं यों,
तिमिर के उर में उतरती है किरण ज्यों।
रेणु ज्योतिर्वेणु बन नवगीत गाती,
सुप्ति में सुधि जागरण की लौट आती।
देखती हूँ स्वप्न - आए प्रभा - पथ पर,
अरुण मुख, जलजात-दृग, सस्मित उषाधर।
व्योम-केश अशेष चितिघन से तरंगित,
वक्ष पर श्रीवत्स-सी शशि-रेख अंकित।
पा प्रतनु पद-भार बनते सजल लोचन
स्पर्श से होते पुलकयुत रोम क्षण-क्षण।
पूर्व जागृति के अचानक लौटते क्यों?
तिमिर भर कर लौटती सायं-किरण ज्यों।

चाँदनी चैत की आई है।
घर, सर, सरि, उपवन, रेत-खेत ओर-छोर तक छाई है !
फूली बेला हँसता पलाश,
दृग छलते, सेमल, अमलतास,
बन-बीच निवारी का विलास,
करुए ने भी छवि पाई है!
ले गन्ध अन्ध बहती बयार,
मंजरी चूमती बार - बार,
चाँदी के हैं खलिहान-हार,
यह परी उतर मुसकाई है!

आया री! अषाढ़ फिर आया!
बादल के उर में धरती की सुधि का
तीर समाया!
अम्बर से उतरी पुरवाई,
प्रिय का सन्देशा ले धाई,
मिलन-मोद से भरी
धरा ने कंचुक हरित सजाया!

विचर रहे गिरि-शिखर गगन में,
चपला से चुम्बित क्षण-क्षण में,
विकल दिवस के उर में निशि का,
स्वप्न सघन बन छाया!

जागे सुप्त गीत अन्तर के,
बहे प्रखर हो निर्झर स्वर के,
घट के सम्पुट में अकूल हो,
प्रणय - सिन्धु लहराया!
आया री! अषाढ़ फिर आया!

मंजरित डाल रसाल की!
जग को नया यौवन मिला,
मधु हास सुमनों में खिला,
रे मुक्त उर-उर की कला,
टोली मुखर पिक बाल की!
अलित्कुल विकल सा घूमता,
कलि-कुसुमचय को चूमता,
आता समीरण झूमता,
गति मन्द मत्त मराल की!

यह शिशिर का अन्त!
पल रहे प्रति वृन्त पर पतझार और वसन्त!
पत्रहीन मधूक सूनी डाल,
फूल को फल को रही है पाल,
खड़ा पीपल किए ऊँचा भाल
प्रज्वलित किसलय - कदम्ब अनन्त !
पीत पत्रों के शयन पर आज,
ले रहा अंगड़ाइयाँ ऋतुराज,
मुखर शुक, नर्तित मयूर समाज,
विकल यौवन सुरभि-शिथिल दिगन्त

शुक-पिक-चातक के गीतों में फिर—
—गूँज उठा स्वरमय वसन्त,
पल्लव-पल्लव पर डोल उठा,
हिल्लोल भरा स्मितमय वसन्त!
खुलती कलियों के प्याले से,
मधु ढाल रहा मधुमय वसन्त,
मलयज की मृदुल हिलोरों पर,
आया यह सौरभमय वसन्त!

लो, मानवती के अधरों पर,
पाटल का कोमल हास खिला,
अपने उपवन के मर्मर में कवि को,
फिर भूला गान मिला!

विचर रही घनमाला!
उड़ती नभ में पंख पसारे
ज्यों खग पंक्ति अराला।
चित्र-विचित्र हो अंकित,
बहुरंगी किरणों से द्योतित,
यह सौन्दर्य गीतिमय गतिमय,
किसकी है कृतिशाला!

चला गया उठ ऊपर सागर,
है उच्छ्वसित अशेष दिक्-प्रसर,
धूम-फेन से छादित अम्बर,
विस्फूर्जित हो रही चंचला
मानों बाड़व ज्वाला।

ओ मेरे ध्रुव तारा!
सूख गई जीवन के मरु में
अन्तर की रसधारा!
स्नेहसिक्त कर दो सब बन्धन,
वंचित रहे न बुझा हुआ मन,
चरम निशित सुधियों के
दंशन की हो मधुमय कारा।

अब विश्लेष नहीं पता झिल,
पथ न कभी हो मेरा पंकिल,
करो प्रकाशित कण-कण तिल-तिल,
मेरे तुम्हीं सहारा

खो गया हास तुम्हारा हाय।
कुटिल कंटक-वन में असहाय।।

शरद की ज्योत्स्ना का वह लास,
दिवस का मधुऋतु के उल्लास,
भरा था जिसमें हृदयाकाश—
हो गया सहसा तम में लीन,
काल के विप्लव में असहाय।।
बन गया है मरु सावन मास,
शेष बस ज्वालामय नि:श्वास,
और यह जीवन जला जवास—
रात फिर दिन गिनता निरुपाय।

पाया स्नेह न कभी तुम्हारा
नयनों के जल में पलता है
जीवन-दीप हमारा।
मैं उकसाता हूँ रह-रहकर सुधि की गीली बाती,
किन्तु तुम्हारी निठुर फूँक से काँप-काँप रह जाती,
मिली न अंचल-ओट, न कर का कोमल करुण सहारा।
पता नहीं क्यों रज बटोरकर तुमने उसे सजाया,
फिर कब इस धारा में निर्मम, तुमने उसे बहाया,
विषम तरंगों में ठुकराया जहाँ न कूल-किनारा।
महाशून्य में रही जागरित दीपक की लघु ज्वाला,
तिमिर-ओक में बिखर गई बन किरणों की जयमाला,
है निर्वाण समीप-तभी तो टूटेगी यह कारा!

बिदा माँगी आज प्रात:
कुन्द ने मुझसे,
चुन रहा था फूल
पूजा के लिए जब मैं—
वल्लरी पर आज केवल चार पुष्प खिले,
चतुर्वर्ग समान करते प्रेरणा का
दान उज्ज्वल शुभ्र !
कहा उसने—'जा रहा हूँ सखे !
मैं अब—
तभी आऊँगा करेगा शिशिर
जब फेरा धरा पर फिर!
आज मानसरूप रथ पर निखिल जन के
आ रहा आरूढ़ होने के लिए मधुमास
गन्ध मधु से जाएँगे भर
सब दिशा आकाश!

आज दर्पण में न निज को देख पाती,
किस तरह अभिसार का सम्भार पाती।
मैं स्वयं बदली कि बदले अवनि-अम्बर,
मर रही है अगति-सी कैसी निरन्तर।
प्राण का चातक हुआ है मौन सहसा,
रहा उलटा आज कोई पवन बह-सा।
बन्द सकल गवाक्ष भीतर भा रहे तुम,
क्या स्वयं अभिसारिका बन आ रहे तुम?
तो सुनो यह दीन दर्पण तोड़ती हूँ,
बिन्दु को निज सिन्धु में लो, छोड़ती हूँ!

बहा, अलि विषम वसन्त-समीर!
वेदना से चंचल मन-प्राण,
दृगों में अस्थिर अश्रु अजान,
किसी की सुधि से चल चुपचाप—
बिंध गए मंजरियों के तीर!

खुल किंशुक के उर का घाव,
गया कोकिल का दूर दुराव,
उठी कलियों के उर से काँप—
मुग्ध-सी सौरभ अन्ध अधीर!

देकर कुन्दों को सुषमा का आभार
गई, वह शरद गई!
उतरी धरती के आनन पर
आभा अनुपम हेमन्तमयी!
लतिका में, तरु-तृण-गुल्मों में
नव-नव तुहिनों के सुमन खिले,
दिग्वधुओं के मधु अधरों पर
चुम्बन तुषार के सहज झिले।
प्रिय के परिरम्भण को अधीर
आतुर-सा-सहसा दिवस ढला,
तम के अंचल में चंचल-सी
निकली प्राची में चन्द्रकला।
फिर डोर उठी रे! पश्चिम की वातास
विषम अति शिशिर-सनी।
फिर साल उठी है जीवन में
किसी सुधि की यह विशिख अनी।

अपने मिलनोत्सव में अजान
प्रियतमे, किधर हेमन्त गया,
रजनियाँ शिशिर की स्वप्न हुईं,
आया फिर आज वसन्त नया।
खुलती व्याकुल उच्छ्वासों में,
कलियाँ, कोकिल की काकलियाँ,
मंजरित आम वन में अविरत,
चलती भ्रमरों की रंगरलियाँ।
सौरभित पवन के झोंकों में,
अज्ञात किसी की छवि बहती,
अरुणिमा तरुण उर की गहरी,
मनसिज की विजय-कथा कहती।
बाँध लो नयन, मन, यौवन में,
मधुमय वसन्त की ये घड़ियाँ,
झड़ जाएँ न बेसुध जीवन के,
सपनों की कोमल पंखुड़ियाँ।।

चन्द्रिका जो थी
सतत शीतलकरा,
शून्य जीवन-गगन को
जिसने भरा।

आज वह सहसा
कुकुभं में खो गई—
आह! तन का तरु
न अब तक क्यों झरा।

था प्राप्त मुझे
जो अमृत भांड बह गया,
मिला है मुझको
घूँट-घूँट अब कालकूट!
है शिरा-शिरा में
उद्वेलित वेदना-सिन्धु,
परिप्लावित जीवन
सीमाएँ सब गईं टूट!

मेरे जीवन का
गरल पिया सब तुमने!
मेरे तन-मन की
व्यथा सही सब तुमने!
अब कहाँ गई
वह शीतल मधुमय छाया?
क्यों तपते मरु में
छाँह छिपाली तुमने।

देखी जो मैंने प्रथम बार,
नित नव बाँकी,
छबि-छटा तुम्हारी
वही शरद ने है आँकी!
नभ जैसे है उर में
स्मृति-दीप असंख्य जले,
पा रहा सतत सब ओर—
तुम्हारी ही झाँकी!

अब नहीं लगाएगा
वसन्त फिर फेरा,
शारद श्री से नभ
शून्य हो गया मेरा!
नयनों में पावस
उर में ग्रीष्म बसा है—
तन पर डाला
हेमन्त शिशिर ने डेरा!

रंजित है प्रति क्षण
आज तुम्हारी स्मृति में,
रिक्तता भर गई है
अनन्त संसृति में।
है दान ईश का
कुटिल काल ने लूटा—
वेदना उफनती
रहती है धृति-मति में!

जीवन - प्रदीप
अब स्नेह हीन है मेरा,
है दीपमालिका के
तमिस्त्र ने घेरा
अब यह निशीथ
गहराता ही जाता है—
उजड़ा-उजड़ा है
मेरा रैन बसेरा!

दीपमाला है,
अन्धकार भरी,
डगमगाती है
जिन्दगी की तरी।
कौन पतवार
अब सम्हालेगा-
साँस तूफान है
त्वरा से भरी!

जिन्दगी
दर्द हो गई मेरी,
दर्द ही
अब दवा हुई मेरी!
आँसुओं से न
आग बुझती है,
आग यह
संगिनी हुई मेरी!!

तुम्हारी स्मृति
बनी है दीपमाला,
रही भर
वेदना का जो उजाला!
यही पाथेय
है अब एक मेरा—
हुई गति
शेष जीवन की अराला!

तुम्हारे पुष्प
यमुना में खिले जब,
बहुत से दीप
धारा में जले तब!
तुम्हारा पन्थ
ज्योतिर्मय निरन्तर—
अँधेरा ही रहा
मेरे लिए अब!!

खोजता हूँ
पयोधरा-सी धवल वह दृष्टि,
खोजता हूँ
मधुर अधरों की सुधामय वृष्टि,
खोजता हूँ
कल्पलतिका का सहज आश्लेष-
खोजता हूँ
चाँदनी की वह निरन्तर सृष्टि!

कहाँ है
नयन स्वागत में विकसते,
कहाँ है
वचन जो सब व्यथा हरते,
कहाँ है
चन्द्रिका शुचि शील की वह,
बिना जिसके नयन मन प्राण तपते !!

दर्द हद से
गुजर गया मेरा,
पिछली यादों ने
है मुझे घेरा!
सर्द आहों में
जल रहा हूँ मैं—
डूब दिनमान
अब रहा मेरा!!

भरा था तुमने
अमृत से रिक्त जीवन पात्र!
रह गया वह
आज होकर भग्न जर्जर गात्र!
नहीं आशा
जहाँ अटकें ये तड़पते प्राण—
चेतन मेरी
तुम्हारी प्रज्वलित स्मृति मात्र!

चाँदनी तुम्हारी
छाया-सी लगती थी,
कुन्दों में
दन्तावलि खिल-खिल उठती थी,
अब बीत गए
वे दिन सब, वे सब रातें—
ज्वालामय है
अब जो शीतल धरती थी!!

जीवन का
विष प्रतिपल पीता रहता हूँ,
निज, असफलता
का स्तूप बना फिरता हूँ!
तुम दूर,
निरन्तर अन्तर मेरा दहला-
दावानल-सा
मैं अनलायिल जीता हूँ !!

दर्द को
आज मैंने पहचाना,
प्यार
कहते किसे हैं, अब जाना!
मेरे
उपवन के फूल सूख गए—
अब
असम्भव है उनका खिल पाना!

दिन हैं वे ही, वे ही रातें,
ऋतुओं का क्रम भी है वैसा,
सूखा-सूखा, अतिशय नीरस,
सब कुछ लगता उजड़ा जैसा!
मेरे जीवन की सुख-समष्टि-
सब गई तुम्हारे साथ आह!
धौंकनी-सदृश आती - जाती,
हैं साँसें, अब जीवन कैसा?

प्रतिरूप तुम्हारा
शुभ्र अनूप शरद आई,
सब ओर
तुम्हारी ही सात्विक, सुषमा छाई!
फिर भी ये नयन
विकल दृगजल में खो जाते—
मृगजल से है
कब प्यास किसी की बुझ पाई!

बना जीवन मेरा तुषानल है,
उच्छ्वसित कालसर्प प्रतिपल है !
साँस का भार अब नहीं झिलता—
शेष कोई न और सम्बल है !

तुमने जीवन में अमृत घोल दिया,
पूर्ण जीवन का मार्ग खोल दिया!
किन्तु फिर अन्धकार घिर आया—
तुमने असमय में साथ छोड़ दिया!

तुमने संकट सभी हरे मेरे,
कवच बन कर सदा रहीं घेरे!
अब मैं अवलम्बहीन नि:सम्बल—
प्राण में विषव्यथा घुली मेरे!

जिन्दगी भार हो गई मेरी,
साँस दुश्वार हो गई मेरी !
दिल को दिन में दबा के रखता हूँ—
रात बरसात हो गई मेरी !!

जो गया, गया, न आएगा,
किन्तु अन्तर न शान्ति पाएगा!
बुझ गई है जिजीविषा मेरी—
कौन यह ज्योति अब जगाएगा!!

स्वप्न में ही कहो,
कहाँ हो तुम?
मुझको भी ले चलो
जहाँ हो तुम!
सहज जीवन
नहीं रहा मुझको—
मृत्यु में ही मिलो,
मिलो तो तुम!

आज फिर खिल
उठी है शेफाली,
यह तुम्हारी
मिसाल है आली!
यह तिमिर में
प्रकाश भरती है—
तुमने मधुगन्ध
से भरा मुझको!

आज फिर से
खिली है शेफाली,
शुभ्रता से
भरी है हर डाली!
शील में, रूप में,
समर्पण में—
यह तुम्हारी
मिसाल है आली!!

सूखे जीवन के
रस स्त्रोत सब मेरे
मरु की अनन्तता
है अब मुझको घेरे
हिम की जड़ता
या शेष तपन सिकता की,
निशि - दिवस
लगाते रहते निष्फल फेरे !!

कुछ और तरह से
रात दिवस अब आते,
सायं - प्रात:
विष प्याले मुझे पिलाते !
वह छल रहा
है रोम-रोम में मेरे—
कंठगत हो रहे प्राण
न आते जाते!!

उषा - सी
तुम उगीं जीवन - गगन में,
भरा आलोक सहसा
प्राण मन में!
अँधेरा ही अँधेरा
रह गया अब—
छिपीं विद्युत - सदृश
तुम सान्ध्य घन में!!

मेरे ही उर के शोणित से
रंगे पलाश सघन!
कटे हुए खेतों सा लगता
क्षत - विक्षत जीवन!
कल वसन्त की राका बन कर तुम
सहसा आईं,
प्राणों में स्मृति के अंगारों
की दहकन छाई!
मैं देखता रहा कुछ क्षण ये
सार्थक हुए नयन !!

दिन ठिठुर रहा कुहरे के
बादल छाए!
वन, बाग, हार सब हैं घन तिमिर छिपाए ?
सरसों के फूलों की यह टिमटिम बाती,
है किरण ज्योति की केवल वही जगाती,
वह भेज रही लिख-लिख वसन्त को पाती-
आओ हम सब मिल
जग की हरें व्यथाएँ !
आह्वान सुना, ज्वाला किसलय बन जागी,
ऊर्जित पलाश ने वन में आग लगा दी,
बेला ने अपनी विगल हँसी बिखरा दी,
मंजरियों ने सौरभ के गीत सुनाए!
कुंठाओं की कोठरियों के अधिवासी
सन्त्रासों के श्वापद चिर तिमिर-विलासी,
है जिन्हें आत्म निर्वासन की प्रिय फाँसी
वे त्रपाहीन जन पत्रहीन बन भाए!
वे देख न पाए मंगल क्रान्ति उषा-सी-
स्वर्णिम किरणों से ये चर-अचर नहाए

धूमिल चाँदनी भरे लगते
भीगे-भीगे पावस के दिन!
घन में अन्तर्हित रवि मंडल शशि-सा शोभन,
दिग्मंडल धारे है निशि का प्रावरण वरण,
ये दिवाभिसार हेतु उद्यत विद्युत क्षण-क्षण,
मेघों के वन में रखती हैं निज पग गिन; गिन !
पुरवाई के झोकों से तरु झुक-झुक जाते,
बादल से होड़ लगा वे जल हैं बरसाते,
गरजना गगन की कितने चातक, मयूर गाते—
नृत्यरत हरित सब शाद्वल, लताकुंज, तृण-तृण!
भीगे-भीगे पावस के दिन!!

दर्द ही दर्द बेदर्द मुझको मिला,
जिन्दगी का सुमन कंटकों में खिला !
वार पर वार झेला किया अनवरत,
शान्ति-सुख छोड़ मुझको हुए भूमिगत!
प्राण में मैं पपीहा बसाए हुए
घूँट पर घूँट विष जा रहा हूँ पिए!
मैं जिया ताप की भट्ठियों में जिया,
अन्धड़ों में न बुझने दिया पर दीया!
दूर पर दूर होता किनारा गया,
मैं बहा किन्तु मझधार बन रह गया !
खे चलो, ले चलो डूबती है तरी,
जीर्ण है और है कोटि छिद्रों भरी!
अब न कोई सहारा कहीं शेष है,
देव ! कितना तुम्हारा अगम देश है।

पार कर पार रे!
ऊर्ध्व-पथ चढ़ रही,
बढ़ रही धार रे !
खुल दल कमल पर नवल प्रात: किरण,
सोहती, ध्वनित संगीत सुन मधुर स्वन,
पवन अनुकूल द्रुत चरण कर संवरण,
हार उर की, न उस पार नीहार रे !
रोध की, शोध निज बोध, मिथ्या कथा,
सर्वथा दूर होगी यहाँ जो व्यथा,
इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा—
सार सिद्धि रह जाए, बह जाए संसार रे !
पार कर पार रे! ऊर्ध्व-पथ चढ़ रही, बढ़ रही धार रे !

छीनते हो क्षण-क्षण जीवन,
कौन तुम आते मृत्यु-चरण?
विवश से सुख के दिवस अजान,
सरस वे तन, मन, यौवन, प्राण,
गए सब-बिफल सकल अनुमान,
शेष केवल स्मृति का दंशन।
निखिल यह जड़-जग, जीव-निकाय,
तुम्हारे दृग-पथ पर असहाय,
बिछ रहे दीर्प, छिन्न, हतकाय,
फैलता दिशि-दिशि प्रलय-ज्वलन।

खण्ड-2

गीत

जय शस्य-श्यामा,
रत्न-प्रसू, पुण्य-भू पूर्ण-कामा!
शोभित हृदय-हार शत-शत-तरंगा-
यमुना, प्रथित पंचनद, शुभ्र गंगा,
विन्ध्या प्रकट मेखला काटि-भंगा,
कटि में सुपट ऊर्मिमाला ललामा!
लंका सरोज स्थिता, वेद-हस्ता,
आद्या-जया, विश्व-वाणी प्रशस्ता,
मातः, पुरा कीर्ति, गति, धीति ध्वस्ता,
जागो, करो जानि महिमाभिरामा!

जय देश,
भारत, सतत सत्य रत,
धर्म नि:शेष!
पाया यहीं ज्ञान ने ज्ञेय आधार,
आकार में आ बँधा जो निराकार,
गूँजा महाशून्य में आदि ओंकार—
संसार में सार का पूर्ण निर्देश!
विस्मृत महत उपनिषद-वेद के बाद,
करुणा, दया, बुद्ध के शुद्ध संवाद,
आदर्श क्या राम के कृष्ण के याद,
कैसे हुए भ्रान्त, कैसे निरुद्देश्य?
गरजो गगन भेद फिर हे महाप्राण,
फूँको वही शंख, फूटें नए गान,
पावें पतित पद दलित विश्व के त्राण,
छाले धरा साम्य का कान्य सन्देश!

जय जय नयनाभिराम,
भारत, जय पूर्णकाम!

हिम - गिरि - शिर - किरणोज्ज्वल,
भाव - नत जलधि पद - तल,
गंगा - जल - धौत अमल,
पावन तन पुण्य धाम!

बहु सुवर्ण - शस्य - हसित,
रवि - शशि-शत-उड्ड-दीपित,
हास - लास - उत्सव नित,
श्री-सुख-सुषमा ललाम!

निखिल - विश्व - जन - संस्तुत,
आदिगन्त कीर्ति - श्रुत,
पावो नव - जीवन द्रुत,
जागो गौरव - प्रकाम!

मातृ-मूर्ति
बँध रही दृष्टि,
सम्मुख अलोक आलोक-सृष्टि।
यह नील गगन,
ले सूर्य, चन्द्र, तारा अगणन,
बरसता भावमय किरण-किरण,
आतप में, ज्योत्स्ना में क्षण-क्षण।

चुम्बित जिससे हिममय किरीट,
गिरि का स्मितिमय, प्रति श्रृंगार स्फीत
हेमाभा में, रंग बदल बदल,
ये झलक रहे झरने अविरल।

बहतीं नदियाँ श्रुति-सुख कलकल,
फैला जीवन का कोलाहल।
धरती का पग-पग स-जल स-फल,
लहराता शस्य भरा अंचल।
मस्तक पर प्रिय काश्मीर हीर,
षड्- ऋतु- रंजित पावन शरीर,
गंगा, यमुना कल कंठ- हार,
श्रुति- प्रथित पंचनद छवि अपार।

युग बाहु - सिन्धु उन्मोदोद्दाम,
यह ब्रह्मपुत्र यौवन - प्रकाम,
बहु लड़ियों की मेखला विन्ध्य,
श्री, सुख, सुषमा, गरिमा अनिन्द्य।
गर्ज्जित लहरों के शत-शत फन,
यह सिन्धु शेष का सिंहासन।
आसीन सहज जिस पर अविचल,
माँ चरणों में लंका - शतदल।

जागी उर-उर शुचि मातृ-मूर्ति,
भर भक्ति-प्रीति-बल दीप्ति-स्फूर्ति।
पैंतीस कोटि कंठों के स्वर,
फूटे,—'जय जन्म-भूमि भास्वर।'

मधुर शोभा - भार री!
दृगों के तम - द्वार की
तुम ज्योति, बन्दनवार री!
ज्ञान तुम निःशेष, सब भ्रम,
प्रभा-तल्प सुवेश, जग तम,
सकल मम श्रम - साधना-
आराधना की पार री!
कुसुम- मुख मकरन्द नव-नव,
रूप रूपसि, निरूपमित तव,
पान कर कवि - मन-मधुप
लवलीन सुख-शृंगार री!
लख खिला कल-कल्प-सुर-तरु,
सिंचा सौरभ - जल द्रवित मरु,
जग बजे उर के सजे अनुराग—
सुर के तार री!

नैश वन-जीवन की मधु-प्रात!
आई तम के उर, शिंजित,
खग - रव नूपुर अवदात!
छवि की सरसी के शत शतदल,
चुम्बित-मुख नव ज्योति चपल पल,
सर के शर से, भेद अगम जल,
खिले सकल नवजात!
तारक हार स्नेहमय मुख-शशि,
गगन-सिन्धु से हुई पार निशि,
नए प्राण से हँसतीं दिशि-दिशि,
उड़ा सुअंचल पात!

करुण कितना प्रणय!
सकल सुख - शृंगार का
कुछ आँसुओं में लय!
कामनाओं की चिता बन,
जली मैं, अनुदिन निपीड़न,
किन कठिन हाथों हुआ सखि,
हृदय का यह क्रय!
सतत छलनामयि शुभाशा,
वेदना ही शेष भाषा,
दग्ध - अन्तस् रह गया,
कुछ सुकृति-स्मृति-संचय!
ताप से सब कुछ गया गल,
शून्य ही अवशेष केवल,
रोकता रे, क्यों खड़ा पथ,
निठुर नील निलय!

तुम कौन स्नेह-दृग खोल रहीं;
स्वप्नों में मृदु-मृदु डोल रहीं!
उर की वीणा की नव-नि:सृति,
आकुल-कर व्याकुलतर झंकृति,
प्राणों को पावन गायन की,
गति में तुम अविरत तोल रहीं!
मेरे नव - जीवन के नभ पर,
तुम यौवन की ज्योत्स्ना शुचितर,
तम के उर की प्रिय अंकुर-सी,
शशि, चिर सुख मुख-मधु घोल रहीं!

दृगों में रूप अरूप खिला!
मरु-उर द्रवित, सुधा-रस-सिंचत,
बही स्नेह - सलिला!
भर चेतन पुलकित संसृति-सृति,
अमर तत्त्व बन गई स्वप्न-कृति,
मुखरित प्राणों में गायन बन,
तप - श्रम - सिद्धि - इला!
नव जीवन का अन्ध तिमिर हर,
आई स्वर्ण-किरण आशा भर,
चिर दर्शन बन गया अचिर,
वह मौन मिलन पहिला!

व्यर्थ यह अभिमान!
शरद् - चन्द्रानन न,
प्रिय-मुख का उचित उपमान!
हैं मनोरंजन न खंजन,
और, नव राजीव के वन,
बज रहा उर में मधुर,
उन नूपुरों का ध्यान।
कुन्द की दन्तावली, मिल,
चाँदनी जिसमें रही खिल,
प्रेयसी के हास के अलि,
हीनतम व्याख्यान!
देख दिव के सुमन तारक,
हारते उर - हार पर थक,
मग्न प्रिय - छवि में सतत,
ऋतु, वर्ष, युग का ज्ञान!

तुम यौवन की ज्योत्स्ना शुचितर,
तम के उर की प्रिय अंकुर - सी,
शशि, चिर सुख मुख-मधु घोल रहीं!
रहोगी नयनों में, मन में;
सुन्दरी, प्रति जीवन-क्षण में!
तुम्हारी मुख-सुषमा अवदात,
रँगेगी मेरे सायं - प्रात,
मधुरतर चरणों के मंजीर,
बजेंगे उर के कम्पन में।
तुम्हारी अलकाकुल वातास,
बनाऊँगा प्राणों की साँस,
हासमय अंगों का मधुमास,
खिलेगा कानन-कानन में।

पंक उर अंक पर पद्‌म-पद कौन तुम?
अन्ध-तम हर प्रखर,
तपन आलोक-कर,
रँग रहे जीवनाशा-
मुकुल मौन तुम!
ज्योति - चुम्बित तुले,
प्रणय- रस में धुले,
प्राण खुल पूछते,
प्राणधन, कौन तुम?

बनी अभिरामा!
ज्योति की प्रतिमा प्रतनु,
तरुणी सहज श्यामा।
सान्ध्य अंचल में अचंचल,
नयन-युग तारक रहे जल,
सघन घन-केशा सजल,
छवि की क्षमा क्षामा।
वासना के विश्व की धृति,
पुण्यमय लावण्य की कृति,
प्राणप्रिय के प्रणय की,
सृति-सरित वह वामा।

पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न-संगिनी!
वंकिम चितवन रसाल,
नमित नयन, गति मराल,
कूजित कल नूपुर नित,
मुखर मंजु शिंजिनी।
पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न-संगिनी!
शशि-मुख, रति-रुचिर वेश,
ज्योत्स्ना - हासिनि, सुदेश,
मेचक कच, अंग विकच,
अमल सुख - तरंगिणी।
पल-पल की मधुर ध्यान, आओ स्वप्न-संगिनी!

हरो मेरी अमा!
हँसो जीवन-गगन के
सुखद चन्द्रमा!
मैं विरह में तिमिर - लीन अहरह रहा,
दूर तुम दूर, सब व्यर्थ यौवन बहा,
अब न यह निठुर उर-ताप जाता सहा,
खुलो, प्रिय, खुलो, दुख-दोष कर दो क्षमा!
स्वप्न में ज्योति की किरण शुचि जो मिली,
पा उसे हृदय की कुमुद- कलिका खुली,
नित्य नव तव प्रणय के अमृत से धुली—
किरण-धन अब करो मिलन की पूर्णिमा!

तुम रहोगे, हम रहेंगे।
मरण-जीवन की, पतन-उत्थान की क्रीड़ा सहेंगे।
अन्ध-तम, पथ-लीन, यन्त्रित भ्रान्त जीवन लक्ष्य-हारा,
दूर- है पर दृष्टि में आलोक मंगलमय तुम्हारा।
ध्वंस हो, विश्वास का सम्बल सबल, निर्भय बहेंगे।
तुम रहोगे, हम रहेंगे।
प्रलय-वात्या में बुझें नक्षत्र, शशि, पावक, तरणि गण,
निखिल क्षय में साँस-सा सो जाए चिर-चंचल समीकरण।
देव, तुम फिर भी रहोगे, और सब तुममें रहेंगे!
तुम रहोगे, हम रहेंगे।

यामिनी में दामिनी को अंक से अपने लगाए—
देख री, घनश्याम छाए!
उच्छ्वसित, हर्षित प्रणय की सहज रस-धारा रही झर,
मुखर प्रति उर में निरन्तर मौन के मधुमय अमृत स्वर,
हास से आकाश के निज वास को ज्योतित बनाए।
देख री, घनश्याम छाए!
ध्वनित जो सरि में, सरों में, निर्झरों में मिलन-गायन,
चातकों के चकित प्राणों के लिए असहन गया बन,
कह उठी—"प्रिय-प्रिय कहाँ, किस देश में अभिराम छाए।"
देख री, घनश्याम छाए!
मैं इधर विकला विरह के असि-निशित निज दुख-शयन पर,
हृदय में प्रिय-स्मृति, दृगों में आँसुओं के सजल जलधर,
जागती विधुरा धरा खद्योत के दीपक जलाए।
देख री, घनश्याम छाए!

रे खोज - खोज सब हारा।
वह मिला न श्रेय - सहारा।
लखते ही मैं किस ओर बहा,
भ्रम का न कहीं कुछ छोर रहा,
किसने रजनी को भोर कहा,
यह व्यर्थ हुआ श्रम सारा।
समझा रे, तू ही शान्ति -शयन,
निज छोड़ रहा दुख-शोक पहन,
जग यह तेरा ही मोह - नयन,
तू बनता अपनी ही कारा।
पाया तम - भेद प्रकाश वहाँ,
तकता पथ खिन्न निराश जहाँ,
करता फिर एष विशेष कहाँ,
खो दी जब अपनी दृग -तारा।

जीवन का प्रति चरण मरण रे!
कुसुम-दोल पर लोल ओस-कण,
डोल रहे जग के सुख के क्षण,
वर्ण- भरण रश्मि से उतर द्रुत,
बहा विषम वातास-हरण रे!
वह विभोर कैशोर हर्ष हर,
गया, घिरे तारुण्य-तपन पर,
जीर्ण जरा के घने सान्ध्य घन,
मृत्यु हँस रही रक्त-किरण रे!
महाकाल प्लावन में अहरह—
शत-शत सूर्य, चन्द्र, तारा, ग्रह—
बुदबुद से उठते, मिटते थे,
विकल कह रहे, शरण-शरण रे!

बैठा हूँ वेदना छिपाए!
उर में अनल, दृगों में जल है,
आशा की छलना अविरल है,
जीवन प्रतिपल विषम गरल है,
पीकर जिसे गरल जल जाए!
मेरे तम - जग के ध्रुव - तारा,
सुनो, कह रहा क्या पथ -हारा,
मुझको मुक्ति-युक्ति ही कारा,
हेरो, हार विजय बन जाए!

पार कर पार रे!
ऊर्ध्व पथ चढ़ रही, बढ़ रही धार रे!
खुले दल कमल पर नवल प्रात: किरण,
सोहती, ध्वनित संगीत सुन मधुर स्वन,
पवन अनुकूल द्रुत चरण कर सन्तरण,
हार उर की, न उस पार नीहार रे!
रोध की, शोध निज बोध, मिथ्या कथा,
सर्वथा दूर होंगी, यहाँ जो व्यथा,
इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा,
सिद्धि लह जाए, बह जाए संसार रे!

आकर्षणमय विश्व तुम्हारा!
मज्जित इस छवि के समुद्र में—
मिलता नहीं किनारा।
जलद-वेश्म सुरधनु - आरंजित,
ऊपर नील व्योम शशि-शोभित,
क्रीड़ित सतत अनन्त- अंक में-
किरण - कान्त कल तारा।
ऊर्मिल जलधि-केश उर्वी - उर,
लहराता तम - वास असिततर,
स्वप्न विभोर निशीथ - शयन पर,
वह सरि - धारा - हारा।
मन्द-मरन्द-मूर्च्छित कलि के दृग,
बहता मलय मन्द गन्ध- स्रग,
ए अरूप, चिर - अभिनव तेरी,
रूपमयी यह कारा।

पन्थ में उनके दृगों के पाँवड़े बैठी बिछाए!
प्राणधन अब तक न आए!
वेदना की अग्नि से उर-पिंड तप-तप विकल अविकल,
बह गया नवनीत-सा वह आँसुओं में पिघल गल-गल,
शून्य अन्तस में सघन घन-से विपुल उच्छ्वास छाए!
प्राणधन अब तक न आए!
कर चुकी अर्पित जिन्हें सर्वस्व, जीवन, जन्म, यौवन,
सालती जिनकी प्रतीक्षा आज क्षण-क्षण मरण बन-बन,
उन शरद राकेश को बैठा अमा का तम छिपाए।
सजनि, प्रिय अब तक न आए!

तम के उर विकसित स्मित-रेखा,
अंकित नव इन्दु - किरण - लेखा,
करती अशेष सुख-स्वप्न-चयन,
खोलती उषा-सी निशा-नयन,
घन जीवन के वन में निर्जन
चित्रित-सी पावन मधु - लेखा।
अस्फुट, अशब्द, अश्रुत, अस्वर,
अधरों की रस - रागिनी मुखर,
प्राणों में अमर रही भर - भर—
पंकज का तरल तुहिन - वेषा।

रुक-रुक जाता फिर-फिर पुकार-
तू मुक्त, भुक्ति की अन्ध-शुक्ति,
बाँधती मुग्ध, चलती न युक्ति,
विक्षुब्ध, सतत अनुरक्ति शक्ति,
खोलेगी जागृति स्वर्ण - द्वार।
सम्पुटित जलज-जड़ विभा- भौन,
खोया अलि बन्दी लुब्ध मौन,
लख, देता उसको मुक्ति कौन,
फिर विजय - हार, क्यों बैठ हार।

आओ मानसि, मन मौन-मना!
कच-जाल विकल लहरे-लहरे,
चरणों तक आकर हों ठहरे,
विधु पर घन श्याम घिरे गहरे,
ऊषा पर निशा- वितान तना!
नयनों में ज्योति अमन्द लिए,
अरुणोदय की छवि मन्द किए,
उतरो, फिर मैं कह उठूँ प्रिये,
हँस, हर लो उर का तिमिर घना!

चल रहे सब मौन।
कुछ न कह पाते,
कहाँ जाते, वहाँ वह कौन?
छन्द नव आनन्द अभिनव,
कौन यह आह्वान नीरव,
श्रुत सतत, द्रुत बह रहे,
सब मौन - निष्ठुर मौन!
ज्योति में फिर तिमिर में स्थिर,
ज्ञान में अज्ञान में चिर,
प्रश्न शाश्वत कौन, पर,
उत्तर निरन्तर मौन।

यह तुम्हारा हास!
शून्य रे, निर्मित मनोरम—
ज्योति - ज्योत्स्नाकाश!
नयन- इंगित पर तरंगित,
संसरण जीवन-मरण नित,
मन्द - गन्ध - स्पन्द - सृत,
मृदु-मृदु समीरण लास।
सूर्य शत, शत-शत महत ग्रह,
भ्रान्त - से आक्रान्त अहरह,
शान्त मानव, प्राप्त वह,
चिर शरण, स्थिर आवास।

चल रहे सब मौन।
कुछ न कह पाते,
कहाँ जाते, वहाँ वह कौन?
छन्द नव आनन्द अभिनव,
कौन यह आह्वान नीरव,
श्रुत सतत, द्रुत बह रहे,
सब मौन - निष्ठुर मौन!
ज्योति में फिर तिमिर में स्थिर,
ज्ञान में अज्ञान में चिर,
प्रश्न शाश्वत कौन, पर,
उत्तर निरन्तर मौन।

अस्त रे, जीवन!
धीर पद आता मरण,
असहाय तू न शरण!
क्षीण, मलिन प्रकाश निष्फल,
यहाँ लोहित तिमिर केवल,
डूबते युग, कल्प, काल,
अबाध यह प्लावन!
देख प्रतिपल प्रलय निश्चय,
लीन छायाएँ, सतत क्षय,
खोज अब भी, नहीं पाए,
यदि अभयप्रद चरण!

खोज न व्यर्थ बसेरा!
पंछी, इस वन में भटका तू,
बिसर गया घर तेरा!
ये तरु-वीरुध शूल- मूल सब,
यहाँ मिले फल-फूल किसे कब,
उड़ चल, निठुर नियति-वधिका ने,
पग-पग जाल बिखेरा!
आया तू भ्रममय तम के मग,
पाया विषम- कर्म- संकुल जग,
श्रान्त पंख, अब जीवन गति-श्लथ,
निकट काल का फेरा!

रहा मैं अनिमेष!
निरुपमे, शोभा तुम्हारी-
नव निमेष-निमेष!
चन्द्र-रुचि आनन सुख-स्मित,
मधुर अमृताधर दशन-धृत,
पल्लवित तनु-तन अनावृत,
घने खुलते केश!
चपल नयनों में सुखाकर,
हँस रहा मन्मथ सुमन-शर,
स्पर्श - रस दोलित हृदय,
प्रियतर तरुण उन्मेष!

पावस निशीथ, घन-संकुल नभ,
रस-मुकुल बरसती जल-धारा।
कुछ खोज रही दामिनी विकल,
तुम सोई, मुद्रित दृग-तारा।
बिखरी कपोल पर कुटिल अलक,
कुछ रहस-भरी मृदु पवन-चपल।
निन्द्रित इस मुख-छवि में विलीन,
कितने व्रीड़ा-पीड़ा सुख - छल।
* * *
सोओ प्रिय, सोए विश्व स्तब्ध,
हो तमोमयी यह निशा अमर!
निष्पलक चंचला के क्षण में,
मैं पिऊँ रूप लोचन भर-भर!

अलि, यही बेला!
अचिर यौवन, मत करो,
इस भाँति अवहेला!
माननी, अब सजो तन - मन,
बजो प्रिय-पथ पर मधुर-स्वन,
हठ तजो, नीरस करो मत,
सरस यह बेला!
जाएगी - दिन चार पावस,
रहेगी जीवन - अमा बस,
उठो प्रियतम से मिलो—
अति निठुर अवहेला!

आओ, पिएँ प्रेम का प्याला!
प्रिये सघन आषाढ़-गगन में,
उमड़ी प्रथम श्याम-घन-माला!
किसी चपल की अलखित चितवन,
बेच गई अग का जग का मन,
खोज रहा समीर आलिंगन,
चातक तृप्ति-विधुर मतवाला!
अगणित कंठों के आकुल स्वर,
पुंजीकृत जीवन के पथ पर,
कहते- 'उतरो, झरो वारिधर,
शीतल करो हृदय की ज्वाला!
यह अभिमान-मान, यह कुंठन,
छोड़ो आज लाज- अवगुंठन,
पीने दो, पीने दो इस क्षण-
विस्मृतिमयी अधर की हाला!

आज स्वर भर सिहर पिक ने कुंज-वन में गान गाया!
सजनि, यह मधु-मास आया!
हँस रही कलिका विकल अलि का हुआ उर-देश कम्पित,
बह रहा परिमल - प्रपूरित पवन मन्थर कामनाश्रित,
कुसुम, किसलय, द्रुम, लता, वन में नवीन विकास आया!
प्रणय का मधु-मास आया!
देख, सरसीरुह-सरों में नील तारक- गगन बिम्बित,
उतर आई कौमुदी लघु लहरियों पर चपल- चुम्बित,
झर रहे केशर अरुण, हँस-हँस तरुण ऋतुराज आया!
सजनि, यह मधु-मास आया!

बही नई बयार!
कह रही आया वसन्त,
वसन्त फिर इस बार!
तरुण प्राणों में पुलक नव,
प्रणय के, फैला पिकी-रव,
ग्राम-उपवन में, जहाँ,
घन मंजरित सहकार!
शस्य - बालों में रहे पल,
बीज, सर सरसीरुहोज्ज्वल,
कलित किसलय, खिल पलाश,
जला - जला पतझार!

अस्त रजनी!
उदित प्रिय उषा,
आलोक अवनी!
खिले कल कमल-कुल,
खुले दिशि के मुकुल,
मुखर खग, चपल,
नव भाव-सरणी!
विकल शेफालिका,
गूँथ वर-मालिका,
मसृणतर किरण-
के तार सजनी!
उठो खोलो नयन,
मुक्त छवि के अयन,
खे चलें, खे चलें,
आज तरणी!

आज विश्व के शिशिर - शून्य—
पट पर यह काल - चितेरा
प्रिये, स्वर्ण-लिपि में लिखता है,
फिर वसन्त का फेरा!
विकस रही मंजरी, आम्र-
कानन में गाती कोयल,
विविध कामनाओं में मनसिज,
जगा रहा उर के दल!
कितनी मादक फुल्ल गुलाबों के-
दल की रंगीनी,
उलझी पड़ती हैं कलियों से,
पुरवाई रस - भीनी!

* * * *

यही समय है, यही समय है,
सार्थक कर लो यौवन,
चिर अतृप्ति, फिर चिर अतृप्ति की,
शास्ति सहेगा जीवन!

देखो, प्रिय ! गृह के आँगन में
फैली शारद ज्योत्स्ना अमन्द!
खुल रही रस - विकल शेफाली,
फूटते सुरभि के विपुल छन्द!
आनन्दमयी यह निशा अचिर,
सोकर खोओ मत इसे प्राण!
आओ इस कुसुमित उपवन में,
गाएँ हम अमरण मिलन-गान!

हेमन्त हँसा!
पल्लव-पल्लव में लसा पुलक,
सिहरी री, शस्यांचला रसा!

बिखरा आतप का रुचिर हेम,
निखरा तन, ऊर्जित तरुण प्रेम,
अलकों के कोमल बन्धन में,
शुचि सद्य-स्मित सित कुन्द लसा!

नीहार-अन्ध कर गगन पार,
आया प्रिय, डोल उठी बयार,
आनन्द -तरंगित अंग - अंग,
वह आलिंगन में गया कसा!

रह-रह कह जाती!
'प्रिय-पथ पर अहरह बह-बह,
अन्त मैं न पाती!
'लिए मधु-सुरभि, हिमकण,
पूछ लता - तरु अगणन,
खोज दिशाएँ निर्धन,
लौट विफल आती।
'वन - वन में निःसहाय,
करती फिर हाय-हाय,
भ्रान्त, श्रान्त, क्लान्त - काय,
दह-दह दुख पाती।'
सार्थक श्रम, सहो पवन,
विरह तुम्हारा अमरण,
अगति आह, यह जीवन,
मैं भी गति पाती!

कहो, किस देश से आई,
चपल यह आज पुरवाई?
सुशोभित शीश पर नक्षत्र-शशि-धर छत्र-सा अम्बर,
उतरती, तैरती नभ, चाँदनी के हास- पंखों पर,
सुवासित रेणुओं से वासिता यह अप्सरी आई!
कहो.. . . . .?
अलक्षित इंगितों पर काँपती यह यूथिका थर-थर,
मिला सन्देश प्रिय के एष में आकुल चला मधुकर,
पुलिन के मधु-अधर चुप चूम तटिनी लोल लहराई!
कहो.. . . . .?
पिकी की वेदना का तीर रह- रह चीरता अन्तर,
बिन्धे स्वप्नस्थ - से नीरव खड़े पथ, पार्श्व, पुर, प्रान्तर,
धरा को प्राणधन निज श्याम घन की याद हो आई।
कहो.. . . . .?

बरसो बरसो पावस!
घिरे तिमिर, घिरें घिरें बादल,
मुझे सुखद चपला का कौशल,
भीता कुछ रहे कंठ - लग्न,
प्रिया स्पर्श विवश!

सींच विरह और जलाया तन,
गत वह, अब मिलन-मधुर जीवन,
करो अधिक मधुर हँसो-
कण-कण में रस-रस!

विहरी वन-वन में,
वर्ण-विविध जीवन-निधि,
उतरी वह घन में।
कोमल तन मलय- वास,
दामिनी - विलास हास,
तिमिर तरुण केश-पाश,
खुले, खड़ी मन में।
लहरे सरि, सर, सागर,
कुसुम, लता, द्रुम थर-थर,
छवि के सम्मोहन भर,
कम्पन कण-कण में।
पहन मंजु मुकुल - माल,
नाचतीं कदम्ब - डाल,
गा रही पिकी रसाल,
ताल गति पवन में।

पावस समीर बहती हर-हर!
डोले तरु डोलीं लता लोल-
उर के सब मधुर रहस्य खोल,
काँपती निभृत निज शयनों पर,
कामिनियाँ कृश-तन थर-थर-थर!
घिरते घन, तिरते नील गगन,
चपला से आलिंगित क्षण-क्षण रो,
आमों की पीली डाली पर,
गाती कुछ कोकिल कोमल-स्वर!
शीतल रे, शीतल सुख-स्पर्श,
चंचल शस्यांचल, विपुल हर्ष,
भरती, जो झरती मधु-सीकर,
उतरी वह कौन परी सुन्दर?

लुट रहा हास,
रे पके सुनहले खेतों में,
लुट रहा हास!

नीली ओढ़नी सम्हाल, सुघर,
गाँव की वधू कुछ हलके कर,
काटती खेत, हँसिया सर-सर,
चुरियाँ रन-रन, तिरती मिठास!

खलिहान बसे, गार पर गार,
गेरे, घेरे सब बाग - हार,
भुरहरी रात, पछुवा बयार,
बहती महुए की लिए बास!

अब तो करो पार!
फिर-फिर विकल क्लान्त तुमको पुकारा,
विश्वास था देव, दोगे सहारा,
बहता थका, दूर अब भी किनारा,
सम्बल विगत, और दुस्तर तिमिर-धार!

वे पान्थ, जो साथ में थे हमारे,
संघात के वात में भ्रान्त हारे,
खोते गए शून्य में, बन्द तारे,
मैं ही रहा आज दुर्वह व्यथा-भार!

खोजूँ किसे और?
मात:, चरण में शरण दो,
वहीं ठोर!

बहते तमोमूढ़ मेरे दिवा - रात,
दिग्भ्रान्त मैं दूर का पान्थ श्लथ-गात,
कंटक मिले, शत झिले घोर आघात,
अब भी कृपा का छिपाया कहाँ भोर?

उतरो हृदय पद्म पर तुम किरण-कान्त,
ज्योति: सरण प्रति चरण छिन्न हो ध्वान्त,
मेरे ज्वलित शाप- सन्ताप हों शान्त,
कोई नहीं और, खोजूँ कहाँ ठौर?

करो मत यों छवि का उपहास!
घूँघट के घन में न दुरेगा,
मुख-शशि-विफल प्रयास!
फूट पड़ा है अंग-अंग में यौवन का मधु-मास,
व्यर्थ छिपाओगी वसनों में यह अनंग का लास,
मनोरम तनु-तन ज्योत्स्ना-वास!
करो मत यों छवि का उपहास!
विकस रहे जो प्रणय-सरोवर के अनिन्द्य अरविन्द,
उन्हें विकल-से खोज रहे हैं प्रिय के नयन-मिलिन्द,
करो कुछ तो अनुराग प्रकाश!
दुसह प्रेयसि, छवि का उपहास!

चलना रे, कितना अभी और?
तम-संकुल इस पथ का न पार,
चिर-मौन कौन तुम कर्णधार,
ठहरो क्षण-भर, हम गए हार,
क्या इस रजनी का नहीं भोर?

सूने दिगन्त पर आस - पास,
बिखरे ये सुख-दुख, शोक-हास,
दुर्वह अब जीवन श्वास-श्वास,
है अन्त-हीनता का न छोर?

तुम्हें बाँध बाहों में!
डुबा दिया मैंने बरसों की,
विरह - बढ़ी आहों में!

शत-शत अश्रु-तरल भर चुम्बन,
दे अपना चिर-प्रणय-विकल मन,
सुमन, तुम्हें पाया जीवन की,
कंटकमय राहों में!

बीता अब रीता अतीत वह,
सुन प्रिय, तेरा मिलन-गीत यह,
सोए दुख के दिवस, जगेंगी-
रातें स्थिर चाहों में!

आते जो, वे मिटते जाते,
पद-चिन्ह भी नहीं रह पाते!

जीवन यौवन की प्रबल धार,
सूखती अचानक बार- बार,
है काल-व्याल चिर-दुर्निवार,
विष-दंश न कोई सह पाते!

आकाश चूमते सौंध शिखर,
अतलान्त-असीम महासागर,
ऋतु, अयन, वर्ष, युग के पथ चल,
निरुपाय शून्य में खो जाते!

चढ़ती दुपहर,
बह जाता कभी पवन हर-हर!

बजरी, जुवार, ईख के खेत,
पकते, झुकते कुस-कास सेत,
गोमती-तीर चमकती रेत,
हँसती सुनहली धूप ऊपर!

बड़ के टीले पर है मेला,
कतकी का ले पैसा - धेला,
पुण्य के पण्य में इस बेला,
समवेत ग्राम के नारी-नर!

प्रिय, तुम्हें पाऊँ!
चाहता मैं कुछ न,
पर प्रियतम, तुम्हें पाऊँ!

अनिल बन घूमूँ, सलिल बन बह कहीं जाऊँ,
धूम बन जल-जल उठूँ, अम्बर अधर छाऊँ,
व्योम में खोऊँ, कहीं प्रियतम तुम्हें पाऊँ!

प्राण में भर मान मैं गाऊँ - सदा गाऊँ,
बनूँ चातक, पिक बनूँ, सुमयूर बन आऊँ,
स्वाति-जल ऋतुराज में, घनश्याम में पाऊँ!

धूल बन लोटूँ, कहीं पद पद्म पा जाऊँ,
तिमिर बन भूलूँ, भ्रमूँ, भटकूँ विपथ धाऊँ,
चन्द्र-छवि निस्तन्द्र तेरी आँक यदि पाऊँ!
प्रिय, तुम्हें पाऊँ—प्रियतम, तुम्हें पाऊँ!

मधु-ऋतु की मधुर बिहान, प्रिये!
आओ परिचित मुसकान प्रिये!

उपवन, वन, विटपी, तरु विशाल,
सब शिशिर-शुष्क, गत-पत्र-डाल,
पहनें अब सौरभ- सुमन - माल,
लौटे फिर भूला गान, प्रिये!

दुख-कृश जग को कर रहा जीर्ण,
झंझाहत झोंकों से विशीर्ण,
उस हिम को कर उर-उपल दीर्ण,
उतरो किरणों की बान, प्रिये!

प्रिय, तेरे पथ पर बही-बही!
मैं विपथ रही, चिर-व्यथा सही!

गिन-गिन जीवन की श्वास-श्वास,
अब निष्क्रिय बन, बैठी उदास,
निरुपाय, दीन, कोई न पास,
अवलम्ब तुम्हारा नाम यही!

नैराश्य - निशा में उषा - चरण,
आओ - आओ, प्रिय, करो वरण,
कब से पुकारती - शरण, शरण,
आशा की रेख न शेष रही!

रे, सुख के दुख के चपल चरण,
आते, जाते नित, जीवन-धन!

मेरी जड़ता पर बार-बार,
हँस-हँस करते निर्मम प्रहार,
आशा - कांक्षाओं में अपार,
मृदु- मधु-स्पन्दित करते नर्तन!

वासना, तृप्ति, अज्ञान, ज्ञान,
साफल्य-वि-फल, सायं-बिहान,
हँसते क्षण-भर ऋतुपति सुजान,
फिर वही आँसुओं के सावन!

मुँद गए दिवस के विवश लोचन-नलिन,
रख रही कौन पद मन्द अति मन्द गिन!
लाज - तम - संवृता,
नयन, मुख, तनु-लता,
जग रही तारिका-
दन्त - मुक्ता - किरण!

मौन की मानिनी,
विश्व - उर - स्वामिनी,
भर रही सहज सुख-
स्पर्श मंजुल, मसृण!

तेरा नाम, तेरा ध्यान,
मेरी गीति, मेरा ज्ञान!

तुमको खोजता सर्वत्र,
पहुँचा मैं न तुम हो यत्र,
लिख-लिख आँसुओं के पत्र,
है अति विकल, विथकित प्राण!

प्रिय, अब सह न जाता मौन,
सोचो देव, अपना कौन,
मेरा जगत् भ्रम - तम - पूर्ण,
आओ, अमर स्वर्ण - बिहान!

दे रहे मधु-दान अलि, घन!
अन्त - हीन, असीम नभ में,
बढ़ उमड़ आकुल यथा मन!

विकल उर्वी के उरोरुह,
स्पर्श भर, पाते न सुख सह,
सिहरते आकम्प रह - रह,
बह रहा मन्थर समीरण!

खोल चपला के विलोचन,
हेरते ये चपल क्षण-क्षण,
विपुल कंठों से मधुर स्वन,
फूट पड़ते गान अमरण!

देख, सरि - सर का महोत्सव,
शिखी, पिक का नृत्य-रव-नव—
व्याप्त पर मुझमें विरह- दव,
दूर वे मेरे हृदय - धन!

बीते रे, दिन बीते!
जीवन-शतदल के सब पल-दल,
सुख-सौरभ से रीते!

मुकुलित, पुलक-प्रकम्पित नव तन,
वह क्रीड़न, पीड़न, आलिंगन,
सरल विनोद-प्रमोद- मधुर मन,
स्वप्न-स्मृति-दिन बीते!

सूखी सुषमा - सुधा - तरंगिणि,
किस अतीत- शय्या पर रंगिणि,
सोई फेर नयन, प्रिय- संगिनि,
शैशव - श्री, सुप्रीते!

खोया तुम्हें कर्म- श्रम पाया,
अहरह क्लान्ति अक्लान्त कमाया,
क्षीण हो रही माया - काया,
अब विषाद - विष पीते!

मिला जीवन, वन परिपूरण,
सकल लहराए री, तन-मन।

आई कनक-कलित, छवि-आकृति,
मन्द-मन्द अति मन्द मलय - गति,
बजा मंजु मंजीर, विपुल रति,
भ्रमरों का गुंजन।

मिली मधुर कर- किरण बढ़ाकर,
स्रस्त, शिथिल ज्योत्स्ना का अम्बर,
भरे, मुग्ध किसलय- अधरों पर,
मुकुलों के चुम्बन!

बार - बार सहकार - अंक पर,
अर्द्ध-शचित गाती पिक- स्वर भर,
सकुच-सिहर, अग-जग का उर हर,
गूँज रहा मधु स्वन,

वह गई रात!
बातों - बातों में लघु पल-सी,
बह गई शिशिर की दीर्घ रात!

कहते वियोग की करुण कथा,
जागी प्रिय के उर की ममता,
पहले ही चुम्बन में सहसा,
खिल उठा लजीला अरुण प्रात!

अधरों का अधरों में सुहास,
मुरझाया, जग का रंग- रास,
निष्प्रभ नभ में होती विलीन,
फीकी शशि - रेखा पीत - गात!

आओ मधुर चरण!
खोल हृदय-शतदल के सब दल,
उतरो परिवर्तन!

भरो, करो जग के जगमग मग,
हरो जटिल भ्रम-तम-जड़ दुख-नग,
मिले दृष्टि स्थिर, सुधा- वृष्टि फिर,
सृष्टि नवल अमरण!

अकल तान,, मृदु गान एक स्वर,
बहें उभय कंठों के निर्झर,
रहें प्रणय-अभिनय में लय नित,
जीवन, जन्म, मरण!

आई यह शारद शुभ्र रात!
बिधु - मुख - सुख - हास - प्रकाश - पूर्ण—

तारा - हारावलि - रम्य गात!
नीले नव नभ के मुक्त- केश,
अपलक ज्योतिर्दृग भाव-शेष,
विकसित वन-यौवन, गन्ध-वेश,
प्रवहित श्वासों में मलय-वात!

उर-उर की जड़-चेतना छीन,
किरणांशुक में वह खड़ी लीन,
चिर सुंदर रे, वह चिर नवीन,
लाएगी जागृति, स्वर्ण-प्रात!

श्यामल, कोमल, चंचल अलकें,
इनमें बँध बिध, खो सब सुध-बुध,
बन जाती हैं अचपल पलकें।

आनन - सरोज पर तर निर्भर,
अलि-कुल-सी आकुल तृष्णा-सर,
छवि-दिन-मुख पर सुख-सान्ध्य-प्रहर-
लख उर की मधु-रस-निधि छलकें।

ये व्रज - बालाएँ मद - विह्वल,
मोहन - मुख घेर रहीं निश्चल,
सुषमा की यमुना में प्रतिपल,
रलमल बहु - भाव - भरी झलकें।

तुम हो, फिर यह व्यथा रहे क्यों?

द्वेष - दम्भ - दुख - द्रोह - मोह - पर,
भेद - क्लेद - सन्ताप - पाप - ज्वर,
जलता जग-जीवन सचराचर,
करुणामय, भव-भय न बहे क्यों?

खुलें करुण तव नयन अमृतमय,
गत हो मृत्यु - भीति, मृत्युंजय,
विश्वरूप हे, अनघ, अनामय,
तुममें तम, जन भ्रान्ति सहे क्यों?

मारो मत पिचकारी,
होली खेलती मैं हारी!

रँगे गुलाल, जगमगे तन-मन,
भीगे वसन, वश न अब यौवन,
करती जीवन - प्राण समर्पण,
बलिहारी बलिहारी!

पीर - अधीर अबीर भरे दृग,
छूट गईं सखियाँ, न मिला मग,
पकड़ो कर, उठते न थके पग,
यह निकुंज श्रम - हारी!

तुम उषा मेरे गगन की!
इस विरह की दुख-निशा के पार,
आशा नयन-मन की।
सहज उर की शून्यता में आ प्रिये, सावन समाया,
रूप का, रस का, तुम्हारे स्पर्श का आसव पिलाया,
चंचलालिंगित घिरी उतरी उधर नव घटा घन की!
मैं अकेला आज अपलक वेदना अपनी सँजोए,
चातकी की आह, पिक के गान में अस्तित्व खोए,
सुनूँ कब नूपुर-मधुर पद-चाप प्रिय तव आगमन की?

फागुन के दिन आए!
आमों में छवि मंजरियों की,
सौरभ में सुधि अप्सरियों की,
गति समीर में किन्नारियों की,
भृंग संग चढ़ धाए!

कलरव के सुख कंपित अम्बर,
प्रणय-विकल लतिका-द्रुम थर-थर,
रँग - रँग यौवन के अंकुर उर,
किसलय - कुसुम सुहाए!

प्रति सर स्वर्ण- सरोज रहे हँस,
जन-जन प्रीति-प्रतीति-गीति वश,
नयनों में बस मधु, मधु में रस,
रस में प्राण समाए!

भुवन - मोहन हे!
सहज छवि - मधु—लुब्ध लोचन - प्राण - जीवन हे!
प्रिय तुम्हारी गीति -गति पर,
नृत्य करते हहर सागर,
अथिर रवि, शशि, अनिल,
अम्बर, उडु किरण- तन ये!
जन्म के पथ विपथ बह-बह,
मरण का दुख-ताप सह-सह,
खोजते चर - अचर अहरह,
माधुरी-घन हे!
अगति में गति- से समाश्रित,
तिमिर में चिर-ज्योति से स्थित,
मोह के उस पार तुम नित,
प्रेम के धन हे!

चूमती मंजरियों को, घूम-
बसन्ती बहती नई बयार।

खुले सर में सरसिज मधु-घ्राण,
पिकी का गूँजा प्रणयाह्वान,
नया जग में सुखानुसन्धान,
बसन्ती बहती नई बयार।

जगा उर-उर में मादक भाव,
दृगों में यौवन का अपनाव,
प्रणय में लाज, न रोष, दुराव-
बसन्ती बहती नई बयार।

निवारी, कुन्द, गुलाब अपार,
लुटाते गन्ध-दुसह वह भार,
सम्हल कैसे पाए फिर प्यार,
बसन्ती बहती नई बयार।

अकेला मैं निशीथ में आज,
जल रहा अन्तर में अनुराग,
लगी बाहर फागुन की आग,
दूर तुम-बही बसन्त - बयार।

छेड़ो न यह राग!
देखो, चतुर्दिक्
प्रलय की जगी आग!
प्रिय, कंठ की माधुरी यों न ढालो,
मुख की, मुखर भंगिमा तो सम्हालो,
मृदु हास की चाँदनी अब छिपा लो,
मुझसे मिलेगा तुम्हारा न अनुराग।
सौरभ-विकल कलि-कुसुम द्रुम-लता श्रान्त,
रवि, चन्द्र, उडु- वृन्द, सब क्षुब्ध दिग्भ्रान्त,
मूर्च्छित धरा है, प्रकंपित पवन - प्रान्त,
स्वर की शिखा से हृदय जल उठा जाग।
छेड़ों न यह राग!

उर - उर में आषाढ़ समाया!
उमड़े काले मेघ क्षितिज पर,
इन्द्र - चाप, वक-पंक्ति - मनोहर,
बरस रही रस-राशि धरा पर,
प्रणयोन्मेष प्राण में छाया।

गन्ध - मनोज्ञ समीरण शीतल,
हलका अन्धकार का अंचल,
उड़ता अलि, आकुल मैं प्रतिपल,
प्रियतम का सन्देश न पाया!